सहकारी समाज

बैजनाथ सिंह

सस्ता साहित्य मंडल
प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

सत्साहित्य-प्रकाशन

सहकारी समाज

—सहकारिता के प्रारंभ और विकास का विवरण—

बैजनाथसिंह



१९६२

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तंड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

यूनेस्को के सहयोग से

दूसरी बार : १९६२

[illegible]
पंजीकृत मूल्य ... 2/40

मुद्रक
भारत मुद्रणालय,
शाहदरा-दिल्ली-३२

प्रकाशकीय

हमारे देश के सामने सबसे बड़ी समस्या आर्थिक विकास की है। कई वर्षों से इस दिशा में प्रयत्न हो रहा है, फिर भी हमारा लक्ष्य अभी प्राप्त नहीं हो सका है।

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि कोई भी देश बिना लोक-शक्ति के उदय के आगे नहीं बढ़ सकता। संसार का इतिहास बताता है कि जिन-जिन देशों में मिल-जुलकर, अर्थात् सहकारिता के आधार पर प्रयत्न किया गया है, उनमें आश्चर्यजनक प्रगति हुई है।

अन्य देशों की भांति हमारे देश में भी सहकारिता के आंदोलन को पर्याप्त बल मिला है। तदनुसार काफी काम भी हुआ है और हो रहा है। इस पुस्तक में सहकारिता के आधार पर समाज के नवनिर्माण के लिए किये गए कार्यों का संक्षिप्त हाल दिया गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि अन्य देशों में सहकारिता का आंदोलन किस प्रकार प्रारंभ हुआ और अब किस अवस्था में है।

इस पुस्तक को पढ़कर एक महत्वपूर्ण विषय की जानकारी तो मिलती ही है, उस दिशा में चालू प्रयत्नों में योग देने की प्रेरणा भी प्राप्त होती है।

हमें विश्वास है कि इस उपयोगी पुस्तक को पढ़कर पाठकों को लाभ होगा। मामूली पढ़े-लिखे पाठक भी इसे समझ सकें, इसलिए इसकी भाषा को सरल रखने का प्रयास किया गया है और इसका व्यापक प्रचार हो, इस दृष्टि से मूल्य भी कम रक्खा गया है।

—मंत्री

दो शब्द

सहकारी समाज की स्थापना आज के युग की मांग है। कांग्रेस ने तो इसे स्वीकार किया ही है, दूसरे प्रगतिशील राजनैतिक दलों ने भी इसका समर्थन किया है। अपने प्रजातंत्रीय राज्य के लिए यह न केवल आर्थिक लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है, अपितु देश के लिए यह सामाजिक आदर्श भी है।

इस पुस्तक में सहकारी समाज की स्थापना के भिन्न-भिन्न पहलुओं की संक्षिप्त चर्चा की गई है और उस संबंध में व्यावहारिक एवं रचनात्मक दृष्टि से भी विचार करने का प्रयास किया गया है।

आज देश में सहकारिता की बड़ी चर्चा है। कुछ लोग सहकारिता के संगठन की कठिनाइयों के कारण इसके भविष्य के सम्बन्ध में निराशा प्रकट करते हैं। सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनों की अपनी अनोखी गति होती है। उसे स्थानीय नेतृत्व प्रेरक शक्ति प्रदान करता है। इस आन्दोलन को भविष्य में अपूर्व बल मिलेगा, इसमें संदेह नहीं। राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को इस दिशा में सक्रिय सहयोग देना है और देश में सच्चे सहकारी समाज की स्थापना करनी है। प्रजातंत्रीय ढांचे में सहकारिता के विकास की हमारी सफलता दूसरे अर्द्ध-विकसित देशों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन सकती है।

इस पुस्तक के लिखने की प्रेरणा मेरे मित्र श्री ब्रह्मानन्द ने दी। मेरे साथी श्री रूपेन्द्र बहादुर ने सहकारी विभाग के अपने अनुभवों का लाभ दिया। इटावा विकास-योजना के आरंभ (सन् १९४८) से अबतक ग्रामीण जीवन की समस्याओं के निकटतम सम्पर्क से लेखक को सहकारिता की गतिविधि के समझने का काफी अवसर मिला। सहकारी आन्दोलन की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पृष्ठभूमि समझने में श्री विद्यासागर शर्मा की दो सुन्दर पुस्तकों 'सहकारिता का उदय और विकास' तथा 'भारत में सहकारिता का इतिहास' से बहुत सहायता मिली। इस अवसर पर उन सबका स्मरण होना स्वाभाविक है।

—बैजनाथसिंह

विषय-सूची

सहकारी समाज

: १ :

सहकारिता का बुनियादी रूप

परिवार या पड़ोस के लोगों में आपस में मिल-जुलकर काम करने की रीति आदि काल से चली आई है। इसे सहयोग या सहकार कहते हैं। इसकी बुनियाद पर ही समाज का ढांचा खड़ा है। एक-दूसरे की मदद से और साथ-साथ काम करने से ही समाज का काम चलता है।

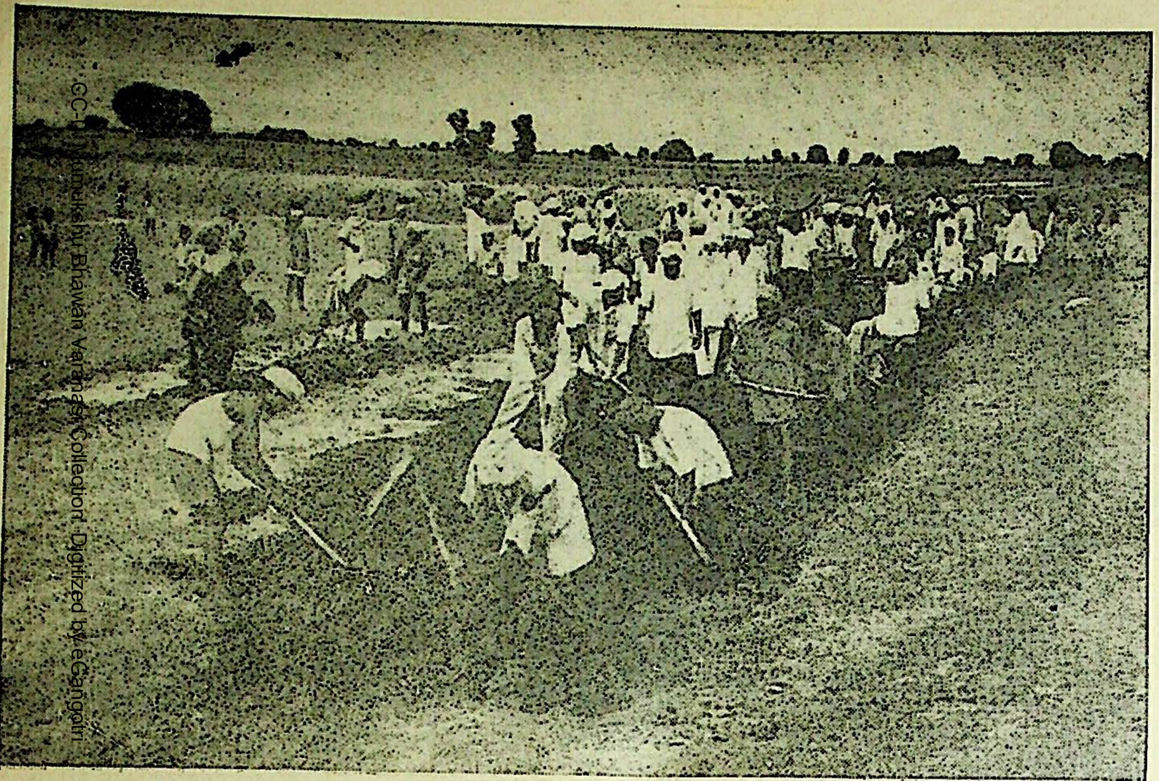
हमारे देश में सहकार की प्रथा बड़ी पुरानी है। भारत के

पुरानी परम्परा सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में एक विनय है—

सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

—हम एक साथ रहें, एक साथ भोजन करें, साथ-साथ वीरता के काम करें। तेजस्वी और बुद्धिमान बनें, किसीसे बैर-द्वेष न करें। हे प्रभो, शांति हो, शांति हो, शांति हो।

आपसी सहयोग, प्रेम और एकता का इससे सुन्दर मंत्र मिलना कठिन है। साथ काम करने की यह भावना हमारी संस्कृति में समा गई। सहकार हमारे समाज के ताने-बाने में पिरो उठा। नई आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से अब इसमें शिथिलता आ गई है, परन्तु गांवों के जीवन में आज भी इसका



मिल-जुलकर काम करने से ही देश आगे बढ़ेगा

बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार के सहयोग को अनौपचारिक या सहज सहयोग (Informal co-operation) कह सकते हैं। इसका व्यावहारिक रूप भारतीय समाज की बुनियादी संस्थाओं में मिलता है।

भारत में सहकार आमतौर से सामाजिक ढंग का था। देश के आर्थिक जीवन में पहले मुद्रा या व्यक्तिगत आमदनी का विशेष स्थान न था। इसके संगठन का बुनियादी स्वरूप सम्मिलित परिवार था। सम्मिलित परिवार में माता-पिता, विवाहित भाई, उनकी बहुएं, उनके बच्चे, अविवाहित भाई-बहनें सभी रहते थे। सब अपनी-अपनी योग्यता, रुचि और शक्ति के अनुसार परिवार के मालिक की आज्ञा पर काम करते थे और सबकी सम्मिलित आमदनी मालिक के पास जमा होती थी। मालिक पूरे परिवार के भरण-पोषण का प्रबन्ध समान रूप से करता था। सबके लिए अन्न-वस्त्र, दवा-दारू, पढ़ाई-लिखाई की जरूरतों का वह यथा-शक्ति ध्यान रखता था। स्नेह और परस्पर त्याग की भावना पर यह व्यवस्था चलती थी। इस व्यवस्था में इसका सवाल ही नहीं उठता था कि कौन अधिक कमाता है और कौन कम। एक तो परिवार के सभी जनों की आमदनी का एक ही जरिया होता था—खेती या मजदूरी या रोजगार। दूसरे यदि कोई अधिक कमाने-वाला होता भी था तो उसकी स्त्री या बच्चे के साथ कोई विशेष बर्ताव नहीं होता था, इस सामाजिक स्थिति को पारिवारिक समाजवाद या बुनियादी सहकार कह सकते हैं।

सम्मिलित परिवार

परिवार के अतिरिक्त आपसी सहयोग पड़ोसियों के दैनिक

जीवन में भी पूरी तरह पाया जाता था। मिलकर पड़ोसी का छप्पर उठाने से लेकर खेती के औजार का लेन-देन, बैलों का मौके पर उधार लेना, बीज की अदला-बदली और उपहार में आई हुई मिठाई, फल या तरकारी का भी परस्पर वितरण होता ही रहता था। पड़ोस के अलावा पुरवे या मुहल्ले में और पूरे गांव के काम-धाम में लोग साथ देते थे। निराई, गुड़ाई, गन्ने की कटाई अथवा पिराई आदि खेती के काम सहयोग के आधार पर ही चलते थे।

सार्वजनिक उपयोग के लिए कुएं, तालाब, मंदिर आदि का निर्माण होता तो था किसी परिवार विशेष की अगुवाई में, पर उसमें बूढ़े, नौजवान, स्त्रियां और बच्चे सभी काम करते थे। उनके जलपान या दोपहर के साधारण खाने का प्रबन्ध कुआं या तालाब बनवानेवाले परिवार के बुर्जुग करते थे। लोग अपने श्रम का कोई मूल्य नहीं लेते थे। मूल्य लेने का तो सवाल ही नहीं उठता था, ये धर्म के काम समझे जाते थे। इनमें भाग न लेना एक तरह की हीनता या पाप की बात थी।

जन्म, विवाह या मृत्यु के मौकों पर काफी खर्च होता था। ऐसे अवसर पर पूरे गांव के लोग धन और साधन से मदद करते थे। कपड़ा, चावल, आटा, दाल, सब्जी, दूध, दही और रुपया नेवते के रूप में लाते थे। इस तरह परिवार के खर्च का भार गांव के लोग और गांव के बाहर के नातेदार और मित्र बांट लेते थे। इस सहकार के न नियम थे, न उपनियम। न इनकी कहीं रजिस्ट्री थी, न लिखत-पढ़त। परम्परा के रूप में यह सामाजिक धर्म सफलतापूर्वक चला आ रहा था।

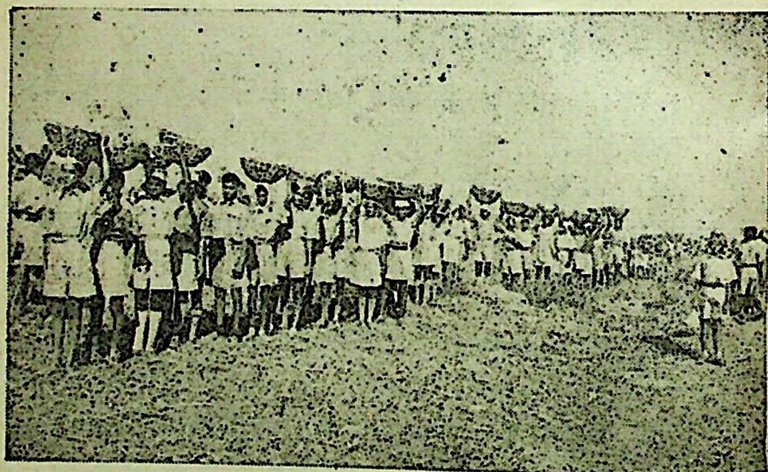
गांव का प्रबन्ध भी पंचायतें चलाती थीं। इनका संगठन स्थानीय शासन की सहकारी परंपरा पर बना था। पंचायत में गांव के चरित्रवान और सेवा की भावनावाले लोग चुने जाते थे। वे निर्भय होकर न्याय करते थे। ये पंचायतें गांव के साझे के चरागाहों तथा भूमि का प्रबन्ध किया करती थीं। ग्रामों के निर्माण तथा ग्रामवासियों की स्वास्थ्य-रक्षा का समस्त भार इन्हीं पंचायतों पर हुआ करता था। राजवंश बदलते थे, विदेशी सेनाएं आती थीं, लड़ाइयां होती थीं, पर गांवों का शासन-प्रवंध नियम से चलता रहता था। उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती थी। इसींलिए जबतक पंचायतों की परंपरा मजबूत रही, विदेशी शासन भारत के आर्थिक और सामाजिक जीवन में कोई बुनियादी कमजोरी न ला सका।

पंचायतें

कार्ल मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'केपिटल' में लिखा है— "भारत की छोटी-छोटी, परन्तु मानव-समाज की इकाइयों में, जो अभीतक कहीं-कहीं टिकी हैं, साझे स्वामित्व के सिद्धान्त पर भूमि का प्रबन्ध होता है। वहां कृषि तथा उद्योग को संगठित किया गया है। ये स्वावलम्बी तथा उत्पादक इकाइयां थीं।"

इन पंचायतों की हालत धीरे-धीरे बिगड़ती गई। अंग्रेजी राज्य में इनकी मान्यता छिन गई। न्याय के लिए अदालतें और शासन-प्रबन्ध के लिए सरकारी कर्मचारी नियुक्त हुए। सामूहिक संस्थाओं को शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा। गांवों में दलबन्दियां बढ़ीं, अनेक झगड़े उठ खड़े हुए, भाई-चारे का वातावरण विरोध में बदल गया, सबको अपनी-अपनी पड़ी। स्वार्थ और फूट के वातावरण में सामाजिक शासन-व्यवस्था टूट-फूटकर

टुकड़े-टुकड़े हो गई। आर्थिक जीवन में भी अनेक परिवर्तन हुए। पहले व्यापार का आधार अधिकतर चीजों का विनिमय था। विदेशों के साथ व्यापार बढ़ने से धीरे-धीरे भारत में मुद्रा का विनिमय बढ़ा। नये-नये रोजगार या व्यापार के काम खुले। विदेशी शासन को चलाने के लिए अनेक अफसरों और कर्मचारियों की जरूरत पड़ी। कुछ परिवारों में एक या दो आदमी पढ़-लिख गये। उनका काम शहर के किसी दफ्तर या कारखाने में लगा। उनकी आमदनी का जरिया घर की खेती, व्यापार या उद्योग-धंधे से भिन्न हो गया। उनकी आशाएं, आकांक्षाएं और सुविधाएं परिवार के और लोगों से अलग हो गईं। चीजों का लेन-देन



सामूहिक कार्य में योगदान

रुपये व बाजार-भाव के आधार पर होने लगा। मजदूरी करके रोटी कमानेवालों और पढ़े-लिखे लोगों में सामाजिक दूरी और

भेद-भाव बढ़ गया। इसलिए एक ही परिवार के दो व्यक्तियों के रहन-सहन में अन्तर हो गया और उनमें पारिवारिक आत्मीयता कम हो गई। इस प्रकार परिवार के विघटन से समाज का भी विघटन आरम्भ हो गया।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में राजनैतिक आजादी के लिए अहिंसा एवं सत्याग्रह के आधार पर व्यापक आन्दोलन चला। मध्यवर्ग में, किसानों और मजदूरों में तथा महिलाओं एवं विद्यार्थियों में जो नवीन चेतना आई, उससे एक ढंग का संगठन आरम्भ हुआ। आजादी मिली। उसके साथ-साथ नई समस्याएं आईं। इनको हल करने की हम कोशिश कर रहे हैं, पर ये समस्याएं बड़ी हैं। खेती की उन्नति करके लोगों के रहन-



महत्वपूर्ण समस्याओं पर सहकारी समिति के सदस्यों में विचार-विमर्श

सहन तथा खान-पान का दर्जा ऊंचा करना है, सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा की उन्नति से लोगों को सुखी करना है।

इन नये उद्देश्यों को पूरा करने के लिए गांवों की मूल संस्था पंचायतों को अच्छी तरह से संगठित करना होगा। आर्थिक जीवन के नये संगठन के लिए गांवों की परम्परागत सहकारी भावना का लाभ उठाना होगा। अनौपचारिक सहकारिता की परिपाटी आज के पेचीदा समाज की जटिल समस्याओं को हल नहीं कर सकेगी, इसलिए औपचारिक ढंग पर सहकारी समितियों का संगठन करना होगा। सहकारी उद्योग, सहकारी व्यापार और सहकारी कृषि-सेवा से समाजवादी विचारधारा को नया रूप देना होगा। आधुनिक सहकारिता के नये ढंग के संगठनों में अनौपचारिक सहकारिता की अपनी पुरानी परम्परा की भावना भरनी होगी, ताकि वे जनता के अपने संगठन बन सकें।

भारत में ही नहीं, दुनिया के सभी पिछड़े हुए देशों में इसी तरह के नये संगठनों द्वारा आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का हल निकालना है। संसार के मुख्य देशों में सहकारिता का आन्दोलन कैसे बढ़ा, उसका विकास इस देश में अबतक कैसे हुआ और हमारे यहां सहकारी समाज की स्थापना में उसका क्या योग होगा, किन-किन समस्याओं के हल के लिए कैसी-कैसी संस्थाएं बनाई और चलाई जायंगी, इन प्रश्नों पर अगले पृष्ठों में विचार किया जायगा।

: २ :

सहकारिता-आन्दोलन का आरम्भ

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक यूरोपीय देशों में एक नये ढंग का औद्योगिक समाज बन चुका था। इसका आधार था आपसी प्रतियोगिता और स्वेच्छापूर्ण व्यापार। एक-दूसरे की सहायता करने के बजाय पूंजीपति वर्ग व्यक्तिगत लाभ के लिए मजदूरों का शोषण करता था। मजदूरों की हालत बहुत दयनीय थी। उनकी स्थिति सुधारने के लिए कुछ उदारचेता नेताओं और मजदूरों ने मिलकर प्रयत्न किया। इन्होंने तरह-तरह की सहकारी संस्थाएं खोलीं। इनका विकास अपने-अपने देश की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार हुआ।

इंग्लैंड

औद्योगिक क्रान्ति के बाद इंग्लैंड के गांव उजड़ गये। लोग जीविका की खोज में खेती और घरेलू धंधों के व्यवसाय को छोड़-कर शहरों में आ बसे। औद्योगिक मजदूरों का बड़ा वर्ग गरीबी और भुखमरी का शिकार बन गया। उनसे दस-बारह घंटे तक निर्दयता से काम लिया जाता था, पर न उनके पास तन ढकने को कपड़ा था, न खाने को रोटी। बिचली श्रेणी के व्यापारियों की मुनाफखोरी के कारण खाने-पीने की चीजों का दाम बहुत महंगा था।

रावर्ट ओवेन इन परिस्थितियों से पूरी तरह परिचित था। वह एक गरीब मोची का लड़का था। १० वर्ष की आयु में ही वह घर छोड़कर जीविका कमाने के लिए निकला। दर-दर की

ठोकरें खाने के बाद कताई-बुनाई के कारखाने में वह नौकर हुआ। अपनी प्रतिभा और परिश्रम से वह एक कारीगर का हिस्सेदार बना और फिर मिल-मालिक। पर वह अपनी गरीबी के दिनों को कभी नहीं भूला। इसलिए समर्थ होकर उनके दुःखों को दूर करने के लिए उसने पूरी-पूरी कोशिश की। इंग्लैंड में समाज़-वाद और सहकारिता के दोनों आन्दोलनों को उसने आरम्भ किया।

रावर्ट ओवेन ने सहकारी पद्धति से कई व्यवसाय खोले। इनमें से कुछ व्यवसायों में सफलता मिली, कुछ में नहीं। इन व्यवसायों में मजदूरों की बचत की पूंजी लगी थी और इनके मालिक मजदूर ही थे। ओवेन द्वारा चलाये हुए आन्दोलन बाद में शिथिल पड़ गये, परन्तु सहकारिता की विचारधारा धीरे-धीरे जड़ पकड़ती गई।

इसके बाद राशडेल नामक औद्योगिक स्थान में ऊन बुनने-वाले मजदूरों की हालत सुधारने के लिए चार्ल्स हावर्थ ने एक सहकारी दूकान खुलवाई। उन्होंने सलाह दी कि मजदूर प्रति सप्ताह दो-दो पैसा बचाकर अपना सहकारी मण्डल खोलें और सस्ते दामों से अपने लिए चीजें खरीदें। नये भण्डारों में नकद माल बेचने पर जोर दिया गया ताकि ये भण्डार असफल न हों। पूंजी पर ५ प्रतिशत लाभ लेने का निश्चय हुआ और विशेष लाभ अधिलाभ के रूप में दिया जाना तय पाया। यह भण्डार दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया। ३६४ रु० की पूंजी से काम शुरू करके दो वर्ष के भीतर ही इसकी पूंजी १६,७००रु० हो गई। राशडेल भण्डार से ही उपभोक्ता सहकारी भण्डारों की परिपाटी पड़ी। धीरे-धीरे इंग्लैंड में थोक बिक्री और बीमे की सहकारी

समितियां भी बनीं।

कृषि-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और ऋण के लेन-देन की व्यवस्था के लिए भी इंग्लैंड में सहकारी समितियां बनीं, पर इस तरह की समितियों का विकास विशेष तौर से जर्मनी में हुआ।

जर्मनी

जर्मनी में सहकारिता का आरम्भ शूज़े डिलित्से और रैफिसिन नामक दो उदार महानुभावों ने किया। १८४८ का वर्ष इस देश के लिए आर्थिक संकट का वर्ष था। इसी साल शूज़े ने बीमारों की सहायता के लिए एक सभा बनाई और कच्चा माल खरीदने के लिए चमड़े का काम करनेवालों की भी एक समिति बनाई। १८५० में उन्होंने अपने नगर में ऋण देनेवालों की एक समिति बनाई और दो वर्ष बाद कामकरों को स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से उन्होंने एक नई सहकारी संस्था का निर्माण किया। इसी समय रैफिसिन ने गांवों में आलू तथा रोटी के वितरण के लिए एक सहकारी सभा कायम की। फ्लैम्सफोर्ड में इन्होंने कर्ज़ देने के लिए सोसाइटी बना ली। यह सोसाइटी गरीब किसानों की मदद करती थी। पर उसके सदस्य अधिकतर धनी लोग थे। १८९२ में रैफिसिन ने और एक ऋण देनेवाली सभा बनाई। इसके सदस्य केवल किसान ही थे। शूज़े और रैफिसिन की सहकारी समितियों को सरकारी सहायता नहीं मिलती थी। इन लोगों ने गरीबों के प्रति सहानुभूति से प्रेरित होकर इन कार्यों को आरम्भ किया और धीरे-धीरे व्यावहारिक अनुभव के साथ सहकारी आन्दोलनों को विकसित किया। दोनों सहकारी नेताओं के विचार समान थे। दोनों ने

सहकारिता की समस्याओं का अध्ययन किया। इसके संगठन में आनेवाली कठिनाइयों का सामना किया और दूसरों को अपने अनुभव से लाभ पहुंचाने के लिए पुस्तकें लिखीं। इस समानता के साथ इनके कार्यक्षेत्र में थोड़ा अन्तर था। शूज़े ने इस कार्य में पहल की थी, किन्तु रैफिसिन ने इसे अपने प्रयोगों से आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त शूज़े की समितियां अधिकतर शहरों के लिए उपयोगी थीं, रैफिसिन द्वारा संगठित सहकारी संस्थाएं गांवों के लिए।

जर्मनी में किसानों और मजदूरों के अपने प्रयास से बनी हुई सहकारी समितियां सच्चे अर्थ में स्वावलम्बी थीं। इनके संगठन, संचालन और निरीक्षण में सरकारी अधिकारियों का कोई हाथ न था। आरम्भ में तो ये केवल सदस्यों की बचत की पूंजी से चलीं। बाद में केन्द्रीय सहकारी बैंक से इन्हें कुछ आर्थिक सहायता मिली। सरकारी नियंत्रण से मुक्त रहने के कारण ही ये जर्मनी के उथल-पुथल से भरे हुए इतिहास के बावजूद सुरक्षित रह सकीं। दोनों महायुद्धों से इनके विकास में बहुत बाधा पड़ी, फिर भी गांवों की जनता की आर्थिक हालत सुधारने के लिए, पहले युद्ध के बाद और नात्सी राज्यकाल में भी, सहकारी ऋण-समितियों की उपयोगिता स्वीकार की गई और उन्हें आवश्यक सहायता दी गई। जर्मनी के सहकारी आन्दोलन की विशेषता बैंकिंग या ऋण के लेन-देन के क्षेत्र में रही है। इसलिए भारत के आन्दोलन में उनसे बहुत-कुछ प्रेरणा मिली है, क्योंकि यहां के सहकारी आन्दोलन ने भी अधिकतर ऋण के लेन-देन के क्षेत्र में ही काम किया है।

इसके अतिरिक्त जर्मनी में खेती-सम्बन्धी सहकारी सभाएं हैं, जो दूध, पशु, अंडे, सब्जी तथा फल और शराब के क्रय-विक्रय का प्रवन्ध करती हैं। प्रायः एक तरह की सहकारी समिति एक ही

वस्तु का कारोबार करती है। अब पूर्वी जर्मनी में रूस की समितियों की तरह बहुद्देश्यवाली सहकारी समितियां बनने लगी हैं, जो गांवों के उत्पादन की योजना बनाती हैं और उन्हें पूरा करती है।

कृषि-सम्बन्धी सहकारी समितियों के काम में अधिक व्यापक सफलता डेनमार्क और हालैण्ड में मिली हैं।

डेनमार्क

डेनमार्क का सहकारी आन्दोलन दुनिया-भर में अपनी मौलिकता, संगठन और स्थानीय नेतृत्व के लिए प्रसिद्ध है। यहां के सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने में दो विशेष परिस्थितियों से बहुत बल मिला है:

१. डेनमार्क की शिक्षा-प्रणाली जनता को सहकारिता की ओर प्रेरित रखती है। बचपन से प्रौढ़ावस्था तक बाल शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से नागरिकों में सहकारिता के भाव कूट-कूटकर भरे जाते हैं।

२. सब किसानों के पास करीब-करीब एक ही अनुपात में भूमि है। इससे उनमें सामाजिक समता है, जो उन्हें सहकारिता के आन्दोलन को अपनाने में उत्साहित करती है।

डेनमार्क में सहकारिता-आन्दोलन के विकास की अपनी कहानी है। प्रशिया की लड़ाई के कारण डेनमार्क की अपनी गेहूं की मंडियां समाप्त हो गईं। अमेरिका के गेहूं की प्रतियोगिता के कारण उसका भाव देश में भी बहुत गिर गया और खेती करना लाभप्रद न रह गया। वहां के किसानों ने विचार किया कि यदि वे दुग्धशाला-समितियां बनाकर दूध और उससे बनी हुई चीजों का

व्यापार करें तो उनका आर्थिक संकट दूर हो सकता है। इस विचार से उन्होंने सारे देश में समितियां बनाईं। ये समितियां छोटी-बड़ी हैं, पर उनकी सदस्य संख्या कम-से-कम एक सौ पचास है।

स्थानीय सभाएं जिला-सभाओं से सम्बन्धित हैं। जिला-सभाएं दूध और मक्खन पैदा करने के लिए मेले या नुमाइशें करती हैं और पत्र निकालकर अधिक दूध के उत्पादन के लिए किसानों को शिक्षा देती हैं।

मलाई निकाला हुआ दूध सुअरों के लिए बहुत लाभदायक होता है, इसलिए सुअर-पालन की सहकारी-समितियां भी उनके साथ-ही-साथ विकसित हो गई हैं।

राष्ट्रीय दुग्ध-शालाएं और सुअर-पालन समितियां, देश के बाहर इन चीजों की बिक्री का प्रबन्ध करती हैं और इन व्यवसायों की उन्नति के लिए वैज्ञानिक अनुसन्धान करती हैं।

डेनमार्क में कृषि-सम्बन्धी सहकारी संस्थाएं भी बहुत बड़े पैमाने पर हैं। ये समितियां खेती की संस्थाओं पर अध्ययन, अन्वेषण तथा विचार करती हैं और किसानों को वैज्ञानिक सहायता पहुंचाती हैं।

डेनमार्क सहकारिता की सबसे सफल प्रयोगशाला है। लगभग सौ वर्ष से वहां ऋण-सम्बन्धी सभाएं भी काम कर रही हैं। यहां की प्रारम्भिक सभाएं मुनाफा नहीं कमातीं। चार प्रतिशत से साढ़े चार प्रतिशत व्याज की दर से इन्हें रुपया मिलता है। केवल आधा प्रतिशत खर्च लेकर वे लोगों को ऋण दे देती हैं। इसीलिए वहां बीज, फुटकर बिक्री, रोटी पकाने और मकान बनाने के लिए सहकारिता सभाएं हैं। यातायात और मनोरंजन का प्रबन्ध भी सहकारी समितियां करती हैं।

डेनमार्क का सहकारी आन्दोलन मुख्यतः ग्रामीणों और किसानों से सम्बन्धित है। किसानी के काम में दुग्धशाला, पशु-पालन, मांस-उद्योग और अन्य सम्बन्धित उद्योग आ जाते हैं।

नगरों के छोटे उद्योग-धंधों के संचालन के लिए स्विट्ज़रलैंड का सहकारी आन्दोलन अध्ययन के योग्य है। घड़ियों के बनाने के लिए घरेलू उद्योग के आधार पर सहकारी समितियां हैं। इनके सदस्य अपने-अपने घरों पर छोटे-छोटे पुर्जे बनाते हैं और उनकी बिक्री बड़े कारखानों को सहकारी समिति के द्वारा कर देते हैं। वे कारखाने पुर्जों को इकट्ठा करके बिक्री की व्यवस्था करते हैं।

स्विट्ज़रलैंड

सहकारिता-आन्दोलन के विकास की इस चर्चा में केवल थोड़े-से देशों का ही विवरण दिया जा सकता है। इसलिए संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, सोवियत रूस और चीन की सहकारिता की प्रगति का थोड़ा-सा परिचय देकर भारत में आधुनिक सहकारिता के विकास की चर्चा की जायगी।

अमेरिका में गो-पालन-सम्बन्धी पहली सहकारी सभा सन् १८०० में बनी थी। नया देश बसाने में नई समस्याएं थीं। जंगल साफ़ करने, पुल बनाने और नहरें निकालने आदि के काम मिल जुलकर ही किये जाते थे; पर इन कार्यों में अधिकतर अनौपचारिक सहकारिता का सहारा लिया जाता था। बाद में गो-पालन, पशुओं की नस्ल के सुधार और क्रय-विक्रय की अनेक समितियां बनीं। आधुनिक सहकारिता के आधार पर प्रसार-कार्य का व्यापक संगठन बनाया गया, किसानों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए औजार, खादों और दूसरी आवश्यक चीजों की पूर्ति का

संयुक्त राज्य अमेरिका

सहकारी ढंग पर प्रबन्ध किया गया। परन्तु सच बात यह है कि अमेरिका में सहकारिता की व्यापारिक सफलता पर अधिक जोर दिया जाता है और वहां की सहकारी समितियां कुशल व्यापारिक संस्थाओं के रूप में ही विकसित हुई हैं।

मार्क्स और लेनिन सहकारिता को पूंजीवादी समाज की एकमात्र अच्छी बात समझते थे। रूस के सहकारी आन्दोलन को सबसे अधिक सफलता इसलिए मिली है कि वहां पूंजीवादी वर्ग की प्रतियोगिता का भय नहीं है। इसलिए सहकारिता का प्रचार रूस के जीवन के हरएक अंग में पाया जाता है। यहां पर जो सहकारी सभाएं बनाई गईं वे इस प्रकार की हैं :

सोवियत रूस

१. औद्योगिक और कृषि-सम्बन्धी
२. उपभोक्ता सभाएं
३, ऋण तथा साख-सभाएं
४. सहकारी संघ
५. विक्री समितियां
६. सहकारी समितियों को सलाह देनेवाली समितियां

नये साम्यवादी चीन का सहकारिता-आन्दोलन इतनी अधिक तेज गति से बढ़ा है, कि जितना संसार के किसी देश में पहले नहीं हुआ। क्रय-विक्रय और खेती के उत्पादन तथा औद्योगिक समितियों का वहां जाल बिछ गया है और लगभग ९० प्रतिशत किसान उत्पादन-समितियों के सदस्य हो गये हैं। भूमि के क्रान्तिकारी सुधारों से कृषि-सम्बन्धी सहकारिता को और बल मिला है। फलतः चीन का समाजवादी समाज एक व्यापक सहकारी समाज बन गया है।

चीन

इस प्रकार हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न देशों में सहकारिता के विकास की अपनी-अपनी विशेषता रही है। इंग्लैण्ड में उपभोक्ता सहकार, जर्मनी में ऋण, डेनमार्क में पशुपालन या दुग्धशाला, स्विट्ज़रलैण्ड में छोटे उद्योग-धंधे, अमेरिका में विक्रय तथा रूस और चीन में कृषि-सहकार की दिशा में विशेष प्रगति हुई है।

भारत में यह आन्दोलन लगभग ५० वर्ष से अधिक पुराना है, फिर भी यह अभी आरम्भिक स्थिति में है। हमारे प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सहकारिता पर सबसे अधिक बल दिया है। आशा है, शीघ्र ही भारत में यह आन्दोलन सफल और व्यापक बन जायगा।

: ३ :

भारत में आधुनिक सहकारिता का विकास

पंचायतों की व्यवस्था के टूट जाने से गांवों में सामाजिक विघटन हुआ। बनिया या साहूकार वर्ग समाज के नियंत्रण में नहीं रहा और मनमाना ब्याज लेकर गरीब किसानों का शोषण करने लगा। गांव-गांव में सामूहिक अन्न-भण्डार खाली हो गये, क्योंकि उनकी देख-रेख करनेवाला कोई नहीं रहा। जनता के असंगठित हो जाने से जमीन के मालिकों और काश्तकारों के सम्बन्धों में विषमता आ गई। संघर्ष बढ़ गये और उपज घट गई। अकाल पर अकाल आये और तत्कालीन सरकार को भी यह महसूस होने लगा कि इस समस्या का कोई-न-कोई हल निकलना चाहिए।

नई न्याय-व्यवस्था और चीजों के लेन-देन में रुपये का महत्व बढ़ जाने से भारत की परम्परा से चले आते हुए रीति-रिवाज नष्ट हो गये। लगान नकद रुपये में लिया जाने लगा। फसल के समय किसान को सारा अनाज सस्ते दामों पर बेचना और जरूरत के समय दुगुने-तिगुने दामों पर खरीदना पड़ता था।

महाजनी के कानून भी महाजनों के ही समर्थक थे। किसान जो रुपया लेता था उसके सूद के रूप में जमीन रेहन कर देता था। आज भी यही विधान है। इस परिस्थिति में किसान के पास कोई साधन नहीं रह जाता, जिससे वह मूलधन वापस कर सके। परिणाम यह होता है कि एक बार कर्ज लेकर उसे लौटाने की नौबत ही नहीं आती।

जमींदार और काश्तकार तथा मजदूरों में एक-दूसरे पर निर्भर रहने और एक-दूसरे की मदद करने की परिपाटी थी। भूमि-सुधार के आंशिक कानूनों और उनके आधार पर लड़े जाने-वाले मुकदमों से यह भावना मिटती गई। महाजनों ने इस परि-स्थिति से लाभ उठाया। कर्जदारों को १००) देकर १५०) या २००) तक का प्रोनोट लिखना और एक बार चंगुल में फंसा लेने पर बराबर उनका शोषण करते रहना आम बात हो गई। व्याज की दर २४) प्रतिशत से लेकर ६०) प्रतिशत तक हो गई।

खेती की उपज भी घटती गई। छोटे काश्तकारों के पास साधन नहीं रह गये कि वे खेत की उपज बढ़ाने के लिए आवश्यक खाद, बीज, औजार या सिंचाई के लिए धन लगा सकें। पुरानी परंपरा का अनौपचारिक सहकार अब काम नहीं दे सकता था।

मद्रास सरकार ने इस दिशा में पहल की और सर फ्रेडरिक निकल्सन को आधुनिक सहकारिता की पद्धति के अध्ययन के लिए यूरोप भेजा। उन्होंने यूरोप की सहकारिता का अध्ययन किया, पर उनका दृष्टिकोण एकांगी था। उनके सामने ऋण की समस्या ही मुख्य थी। इसलिए जर्मनी के 'रेफ़िसिन' प्रकार की सह-कारिता को उन्होंने हिन्दुस्तान के लिए नमूना माना। किन्तु जैसी सफलता जर्मनी अथवा अन्य देशों में सहकारिता आन्दोलन के क्षेत्र में प्राप्त हुई थी वैसी भारतवर्ष में नहीं हुई। इसकी प्रेरणा सरकार की ओर से आई। फलस्वरूप १९०४ का सहकारी-अधिनियम बना इस अधिनियम की मुख्य धाराएं निम्नलिखित थीं :—

१. एक ही ग्राम, नगर एवं वर्ग के कम-से-कम दस व्यक्ति मिलकर सहकारी समिति बना सकते थे।

२. सहकारी समितियां अपने सदस्यों से अमानत प्राप्त

करके सरकार तथा अन्य स्थानों से ऋण लेकर अपने सदस्यों के लिए ऋण की व्यवस्था कर सकती थीं।

३. प्रत्येक प्रान्त में सहकारी समितियों पर नियंत्रण रखने के लिए रजिस्ट्रार सहकारी समिति की नियुक्ति की गई। यह अधिकारी बिना कुछ शुल्क प्राप्त किये समितियों का प्रबन्ध देखता था।

४. ग्रामीण समितियों के सदस्यों का उत्तरदायित्व अपरिमित रखा गया, अर्थात् समिति के सदस्यों में से यदि एक ने ऋण वापस नहीं किया तो वह ऋण एक से या सभी सदस्यों से वसूल किया जा सकता था।

५. लाभ सदस्यों में न बांटकर एक सुरक्षित कोष में रखा जाता था। एक सीमा के बाद वह सदस्यों को बोनस के रूप में दिया जा सकता था।

६. शहरों में बननेवाली समितियों में जबतक लाभ का चौथा भाग सुरक्षित कोष में नहीं जमा कर दिया जाता था, तबतक उसका वितरण नहीं हो सकता था।

इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में रजिस्ट्रारों की नियुक्ति हुई। इसके अनुसार सहकारी समिति में एक ही वर्ग के लोग सम्मिलित हो सकते थे। इससे एक ही ग्राम में ब्राह्मणों, राजपूतों, चमारों की अलग-अलग सहकारी समितियां बनने लगीं, फलस्वरूप एकता के स्थान पर गांवों में विरोध फैलने लगा। होशियार एवं सम्पन्न लोगों ने ऋण लिया तो लौटाने का नाम नहीं लिया। नियमतः वह ऋण सभी सदस्यों से वसूल किया गया। इस प्रकार सहकारी समिति के प्रति लोगों के मन में एक प्रकार का भ्रम छा गया। इन कठिनाइयों के साथ एक विशेष

कठिनाई यह थी कि इस अधिनियम के अनुसार केवल ऋण देने-वाली सहकारी समिति वन सकती थी। कुछ ही दिनों बाद अन्य प्रकार की सहकारी समितियों की आवश्यकता महसूस की गई। परिणाम-स्वरूप १९१२ का सहकारी अधिनियम वना। इस अधि-नियम के अनुसार उपभोक्ता सहकारी समिति तथा अन्य प्रकार की सहकारी समितियों की स्थापना सम्भव हो गई। सहकारिता के क्षेत्र में प्रान्तीय सरकारों को नियम आदि बनाने का अधिकार देकर एक प्रकार से उन्हें विकेन्द्रित किया गया। ऋण-वसूली आदि का विशेष अधिकार समितियों को देकर उन्हें मजबूत बनाने का प्रयत्न किया गया। समितियों के ऊपर किसी एक व्यक्ति का अधिकार न हो जाय, इसलिए यह नियम बनाया गया कि एक सदस्य २० प्रतिशत से अधिक हिस्से न खरीद सके। एक सदस्य चाहे कितने भी हिस्से खरीद ले उसे एक ही वोट देने का अधिकार था। सहकारी समितियों के निर्माण करने, चलाने आदि के नियम ऐसे बनाये गए कि सहकारी समितियां बहुत ही लोचदार हो गईं। हमारे देश के सहकारिता-आन्दोलन में १९१२ के अधिनियम का विशेष महत्व है। इस अधिनियम के अनुसार परिमित दायित्व-वाली समितियों की स्थापना सम्भव हो गई।

इसके फलस्वरूप पूरे देश में हजारों की संख्या में सहकारी समितियों की स्थापना हुई। जहां १९०६-७ में ८३२ प्राथमिक समितियां थीं, वहां १९१३-१४ में १४,५६६ हो गईं। सदस्यों की संख्या ८८,५८२ से बढ़कर ६,६१,८५९ हो गई। १९०४ के अधिनियम की तुलना में १९१२ का अधिनियम पर्याप्त उदार था, उसका फल भी सामने आया। फिर भी उस अधिनियम की मौलिक पृष्ठभूमि उतनी उदार एवं विस्तृत नहीं थी, जितनी

भारतवर्ष जैसे एक विशाल देश के लिए आवश्यक थी। लाखों गांवों के करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को सहकारी जीवन के आधार पर चलाने का कार्य १९१२ के अधिनियम से पूरा नहीं हो सकता था। यह अधिनियम सहकारी आन्दोलन को जन-आन्दोलन बनाने में असमर्थ रहा। इस अधिनियम के बाद सहकारिता आन्दोलन की सलफता एवं असफलता की विस्तृत जांच की भी आवश्यकता महसूस हुई। परिणाम यह हुआ कि सन् १९१४ में मैक्लेगन कमेटी की स्थापना हुई। इस कमेटी ने विभिन्न प्रान्तों में भ्रमण करके सैकड़ों समितियों का निरीक्षण किया और अनेक व्यक्तियों के वयान लिये। इसके बाद इस कमेटी ने एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। अभीतक सहकारिता के केवल आर्थिक पहलू पर जोर दिया जाता था। सर्वप्रथम इस कमेटी ने उसके नैतिक आधार पर बल दिया। इस कमेटी ने सहकारिता आन्दोलन को भारत की बहुसंख्यक ग्रामीण जनता, विशेष रूप से कृषक-वर्ग में व्याप्त जड़ता को दूर करने का एकमात्र माध्यम बतलाया। कमेटी ने यह मत व्यक्त किया कि सहकारिता के सहारे एक धन-हीन तथा बलहीन कृषक जीवन की वे सुख-सुविधाएं प्राप्त कर सकता है, जो सम्पन्न लोग प्राप्त करते हैं। समिति की यह राय थी कि सहकारिता के उस पहलू की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए, जिससे मनुष्य की नैतिकता का विकास होता है, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के ऊपर आश्रित हैं। बिना नैतिकता का पूर्ण विकास हुए सहकारी आन्दोलन भी आगे नहीं बढ़ सकता। इस समिति ने वड़े ही विस्तार से प्रारम्भिक समितियों की रूप-रेखा, उनका संगठन, ऋण देने की अवधि, ऋण पर ब्याज, समितियों का व्यापारिक पहलू तथा पूंजी प्राप्त करने के जरिये,

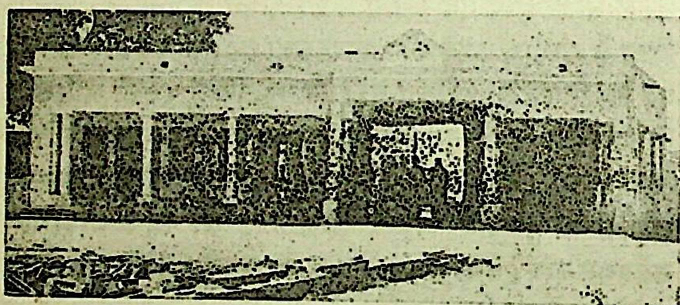
साख का मूल्यांकन, समितियों का निरीक्षण, लेखा-परीक्षण और उनके ऊपर नियन्त्रण की आवश्यकता आदि पर पूर्ण रूप से विचार किया। साथ ही केन्द्रीय एवं प्रान्तीय बैंकों की रूपरेखा, उनके संगठन, उनकी आमदनी के स्रोत एवं ऋण देने के नियम आदि पर प्रकाश डाला।

समिति ने रजिस्ट्रार के कार्यालय के अधिकारियों की वृद्धि पर जोर दिया। साथ ही एक विकास-आयुक्त की नियुक्ति कर उसके अन्दर कृषि एवं उद्योग से सम्बन्धित विभागों को सहकारिता से सम्बन्ध करने की आवश्यकता बतलाई। यद्यपि समिति की यह सिफारिश स्वीकृत नहीं की गई, किन्तु उसकी अधिकांश सिफारिशें मान ली गईं। फलस्वरूप सहकारिता-आन्दोलन तेजी से आगे बढ़ा। सन् १९१९ के मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के अनुसार सहकारिता प्रान्तीय विषयों के अन्तर्गत आ गई। तत्पश्चात् सर्वप्रथम बम्बई तथा क्रमशः मद्रास, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, कुर्ग और बंगाल ने सहकारिता-सम्बन्धी अपने-अपने अधिनियम पास किये। बम्बई ने उत्पादक, उपभोक्ता तथा गृह-निर्माण की सहकारी समिति को बनाने पर जोर दिया। आन्दोलन आगे बढ़ा और इसका प्रभाव देशी रियासतों पर भी पड़ा। हैदराबाद, इन्दौर, ट्रावनकोर, काश्मीर, ग्वालियर आदि रियासतों ने भी सहकारिता-सम्बन्धी अधिनियम पास किये। १९३५ में रिजर्व बैंक आफ इन्डिया की स्थापना के पूर्व मैक्लेगन-कमेटी की रिपोर्ट ही भारतवर्ष के सहकारी आन्दोलन का मार्ग-प्रदर्शन करती रही।

सन् १९३५ में रिजर्व बैंक ने अलग से अपना कृषि-विभाग खोला। सन् १९३६ में रिजर्व बैंक के कृषि-विभाग ने सहकारिता-आन्दोलन के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें बहुत

पुराने ऋणों को माफ करने, अल्पकालीन ऋण एवं दीर्घकालीन ऋण को अलग-अलग करने, ऋण की सीमा निर्धारित करने ऋण को एक साथ न देकर किश्तों में देने तथा समय पर वसूली करने आदि की सिफारिशें कीं।

जबसे रिज़र्व बैंक ने सहकारिता का कार्य संभाला तबसे प्रारम्भिक सहकारी समितियों, केन्द्रीय बैंकों तथा प्रान्तीय बैंकों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है।



मखमेलपुर कोआपरेटिव फार्मिंग का भवन

१९४७ के पूर्व सहकारिता के विकास का यही संक्षिप्त इतिहास है। देश की आवश्यकता को देखते हुए इस प्रगति को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। ५० वर्ष के बाद भी किसान के ऋण की आवश्यकता का कुल २० प्रतिशत भी सहकारी समितियों द्वारा पूरा नहीं हो पाता। इस बीच की प्रगति की ओर माने में भी आलोचना की गई है और उस आलोचना से आंख नहीं मूंदी जा सकती। सहकारी समितियों ने किसानों के अन्दर आत्म-निर्भरता की भावना भरने में सफलता नहीं प्राप्त की है। कहीं-कहीं पर उन्होंने ग्रामीण महाजन की जगह पर स्वयं महाजन

का रूप ले लिया है। अन्तर केवल इतना है कि वे सस्ते सूद पर रुपया उधार देती हैं, जिससे किसान रुपया ले लेता है। किन्तु सख़्ती से वसूल करती हैं, जिससे वह पुनः महाजन के चंगुल में जाने के लिए बाध्य हो जाता है। सहकारी समितियां अबतक किसान के सम्पूर्ण जीवन को छूने में सफल नहीं हुई हैं। विस्तार के अनुसार संगठन का कार्य और भी पीछे पड़ गया, जिससे सहकारी समितियों के ऋण की वसूली एवं कुशलता-पूर्वक उनका कार्य-संचालन भी नहीं हो सका।

इन कठिनाइयों एवं असफलताओं के बावजूद इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सहकारी समितियां ही हमारे देश के आर्थिक एवं सामाजिक संगठन की आधार-शिला बन सकती हैं, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इसी विश्वास के साथ १९४७ के बाद भी सहकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है।

जिस प्रकार छोटी अवस्था के लिए बनाये गए वस्त्र अधिक अवस्था होने पर छोटे पड़ने लगते हैं, उसी प्रकार पहले के बनाये हुए नियम आज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हैं। सन् १९५५ में कोआपरेटिव प्लानिंग कमेटी की स्थापना हुई। उसकी सिफारिशों के आधार पर कई ग्रामों को मिलाकर सहकारी-समिति बनाने पर जोर दिया गया। किन्तु प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने प्रत्येक ग्राम के लिए एक सहकारी समिति बनाने पर ज़ोर दिया है। नागपुर के कांग्रेस-अधिवेशन में भूमि-सम्बन्धी सुधार एवं सहकारी कृषि के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। 'समाजवादी समाज' की स्थापना के स्थान पर 'समाजवादी सहकारी समाज' की स्थापना लक्ष्य रखा गया है। सहका-

रिता-आन्दोलन की गति को तीव्र करने के लिए सामुदायिक विकास मन्त्रालय के अन्दर एक विभाग खोला गया है तथा उस मन्त्रालय का नाम बदलकर सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मन्त्रालय रख दिया गया है। भारतवर्ष में सहकारिता का यही संक्षिप्त इतिहास है। इसी पृष्ठभूमि पर आगे का महान् इतिहास लिखा जायगा, जब सहकारिता के अन्दर देश का प्रत्येक परिवार सम्मिलित होकर नये देश का निर्माण करेगा।

: ४ :

सहकारी समितियों का संगठन

भारत में सहकारी आन्दोलन की नींव केवल ऋण-समितियों की स्थापना द्वारा पड़ी थी। लेकिन सात-आठ वर्ष के अनुभव के बाद यह देखा गया कि केन्द्रीय संस्थाओं के अभाव में सहकारी ऋण-व्यवस्था से पूरी-पूरी सफलता नहीं मिल पाई, क्योंकि प्रारम्भिक सहकारी समितियां आर्थिक दृष्टि से इतनी मज़बूत न हो सकीं कि वे सदस्यों की जरूरतों को पूरी कर सकें। इसके अतिरिक्त यह भी अनुभव किया गया कि ऋण के साथ-साथ दूसरी तरह की भी समितियां स्थापित करके ग्रामीण जनता की अनेक समस्याओं को हल किया जा सकता है। इसलिए सन् १९१२ में एक दूसरा सहकारी कानून पास किया गया, जिसमें इन बातों का ध्यान रखा गया। इस संशोधित कानून के फलस्वरूप सहकारी आन्दोलन ने तेजी से उन्नति की। लेकिन भारत में अधिक दिनों तक ऋण-समितियों की ही प्रधानता रही। द्वितीय महायुद्ध के प्रभाव और राष्ट्रीय सरकार की नीति के कारण ऋण के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी सहकारिता की कुछ उन्नति हुई। वीज, यंत्र और खाद-वितरण, पशुपालन, दुग्ध-वितरण, गृह-उद्योग-धन्धों, गृह-निर्माण, खेती, जीवन-सुधार आदि के लिए भी सहकारी समितियों का संगठन तेज़ी से होने लगा। इस प्रकार भारतीय सहकारी समितियों का ढांचा, जो संघीय है, दो भिन्न प्रकार की संस्थाओं द्वारा बना हुआ है। प्रथम, वे प्रारम्भिक समितियां जो ग्राम-स्तर पर जनता की विभिन्न समस्याओं को

हल करने के लिए बनाई गई हैं। और दूसरी, वे केन्द्रीय समितियां जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रारम्भिक समितियों को सहायता पहुंचाती हैं। इन दोनों प्रकार की संस्थाओं का पूर्ण विवरण नीचे दिया जा रहा है। विधान के अनुसार सहकारिता एक राज्यीय विषय है, इसलिए थोड़ी भिन्नता विभिन्न राज्यों में पाई जाती है, लेकिन सामान्यतः उनके संगठन की रूपरेखा सभी जगह एक-सी है।

प्रारम्भिक समितियां

सहकारी संगठन की बुनियादी इकाई प्रारम्भिक समितियां हैं, जो जनता की तरह-तरह की जरूरतों को पूरा करने के लिए संगठित की जाती हैं—जैसे, ऋण, क्रय-विक्रय, सहकारी कृषि, चकबन्दी, सहकारी सिंचाई, सहकारी दुग्ध, घी, उपभोक्ता-सेवा, गृह-निर्माण, कुटीर उद्योग- धन्धे, गन्ना-विकास व बिक्री, बुनकर-सेवा, जीवन -सुधार, मितव्ययिता आदि की सहकारी समितियां। समितियों का कार्यक्षेत्र एक गांव, मुहल्ला अथवा एक प्रकार के समुदाय के लोगों तक सीमित रहता है। इनकी सदस्यता सभी के लिए खुली हुई है। उसमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रक्खा जाता। ग्रामीण समितियां 'रेफेजन' के बताये हुए नियमों पर अवलम्बित हैं और वे मुख्यतः बहुधन्धी हैं, जो ऋण देने के साथ-साथ क्रय-विक्रय, वितरण एवं पूर्ति का भी प्रबन्ध करती हैं। ये समितियां परिमित दायित्व के आधार पर बनाई जाती हैं। उनकी कारोबारी पूंजी सदस्यों के हिस्से और अमानत तथा गैर- सदस्यों के अमानत से इकट्ठी होती हैं। कोई व्यक्ति एक निश्चित सीमा से अधिक हिस्सा नहीं खरीद सकता। उसे ऋण भी खरीदे हुए हिस्से के एक निश्चित अनुपात में दिया जाता है। शहरी समितियां मुख्यतः खेती

न करनेवालों की होती हैं और छोटे-छोटे उद्योग-धन्धेवालों, दूकानदारों या नौकरी में लगे हुए लोगों की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करती हैं।

समिति के सभी सदस्यों को मिलाकर 'साधारण सभा' बनती है, जिसमें समिति के सम्बन्ध में सभी अन्तिम अधिकार

साधारण-सभा

निहित हैं। हरएक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार है। समिति के प्रतिदिन के कार्य को चलाने के लिए 'साधारण सभा' एक संचालक-समिति का चुनाव करती है, जिसे 'पंचायत' कहते हैं। इस सहकारी पंचायत का अध्यक्ष 'सरपंच' कहा जाता है। समिति के कागजों को पूरा करने के लिए एक वैतनिक या अवैतनिक मंत्री भी रखा जाता है। ऋण आमतौर से सदस्यों को ही उनकी हैसियत और हिस्से के अनुसार दिया जाता है। आशा की जाती है कि यह ऋण केवल उत्पादक कार्यों में ही लगाया जायगा। सभी समितियां अपने लाभ का कुछ भाग आरक्षित कोष (रिज़र्व फण्ड) में डाल देती हैं जो सदस्यों में कभी भी वितरित नहीं किया जा सकता। शेष लाभ सदस्यों को लाभांश के रूप में बांट दिया जाता है। यह १० प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता।

प्रारम्भिक सहकारी समितियां आर्थिक दृष्टि से अधिक मजबूत नहीं होतीं और अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति

केन्द्रीय समितियां

करने में असमर्थ होती हैं। इसलिए क्षेत्र-स्तर पर उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक केन्द्रीय समिति बनाई जाती है, जिसे सहकारी 'संघ' कहते हैं। इसका कार्यक्षेत्र एक जिला अथवा एक ताल्लुका होता है। इनके सदस्य समितियों के अतिरिक्त व्यक्ति भी होते हैं।

इस प्रकार के संघ ऋण, क्रय-विक्रय और वितरण-सम्बन्धी समितियों में विशेष रूप से पाये जाते हैं।

ऋण-सम्बन्धी समितियों के इस प्रकार के संघ सामान्यतः जिला स्तर पर होते हैं, जिन्हें **'जिला सहकारी बैंक'** कहते हैं। सभी जिला सहकारी बैंक राज्य-स्तर पर अपना एक संघ बना लेते हैं; जिन्हें **प्रादेशिक सहकारी बैंक** कहते हैं। इस प्रकार जिला सहकारी बैंक प्रारम्भिक ऋण-समितियों और प्रादेशिक सहकारी बैंक में कड़ी का काम करते हैं। वे प्रारम्भिक ऋण-समितियों की देखरेख भी करते हैं और उन्हें आर्थिक सहायता भी देते हैं। इसी



सहकारी खेत में खाद-वितरण

प्रकार सभी जिला सहकारी बैंक, प्रादेशिक सहकारी बैंक से भी लाभ उठाते हैं।

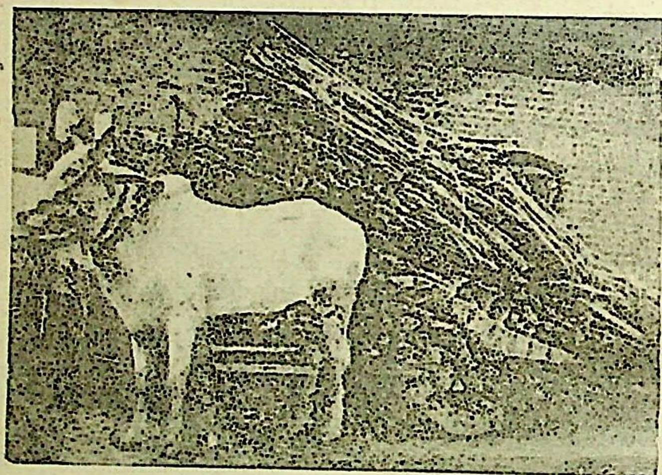
क्रय-विक्रय और वितरण की समितियां या बहुधंधी सहकारी समितियां भी जिले के स्तर पर अपनी केन्द्रीय समितियां स्थापित

करती हैं, जिन्हें 'क्षेत्रीयसंघ' कहते हैं। वे क्रय-विक्रय तथा वितरण-संबंधी सभी कार्य करती हैं, जिन्हें बहुधन्धी समितियां अपने सीमित साधनों के कारण आर्थिक रूप से नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त संघ समितियों को अपने व्यवसाय चलाने में सहायता भी देते हैं। मुख्यत: बीज, कृषि-यंत्र तथा खाद-वितरण और ईंट के भट्टों का कार्य करते हैं। प्रत्येक जिले में क्षेत्रीय संघों को मिलाकर एक 'जिला सहकारी संघ' संगठित किया जाता है। यह संघ जिले के सारे क्रय-विक्रय और वितरण की चोटी की संस्था है। ये संघ साधारणत: वे सभी काम करते हैं जो जिले में समितियों के कारोबार को ठीक तरह चलाने और सदस्यों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए आवश्यक होते हैं और जिन्हें समुचित रूप से जिला-स्तर पर ही किया जा सकता है। इन जिला सहकारी संघों को मिलाकर राज्य-स्तर पर प्रादेशिक सहकारी संघ बनता है। इसका प्रमुख उद्देश्य सहकारी आधार पर उत्पादन में वृद्धि, क्रय-विक्रय तथा विकास करना है। प्रादेशिक संघ का कार्य जिला-संघों को सलाह देना, व्यापार करने के लिए उन्हें शक्तिशाली बनाना तथा राज्य-स्तर पर और राज्य के बाहर उनके लिए सम्पर्क स्थापित करना है।

उपरोक्त ढंग से ही, औद्योगिक एवं गन्ना-विकास तथा बिक्री समितियों के भी क्षेत्रीय, जिला-स्तर और राज्य-स्तर पर केन्द्रीय समितियां अथवा संघ हैं जो उनके उद्देश्य की पूर्ति में सभी प्रकार की सहायता देते हैं।

इन समितियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की समितियों का विकास काफी बाद में हुआ है, इसलिए उनमें इस प्रकार के

संगठनों का अभाव है, यद्यपि इस तरह का संगठन बनाने की ओर उनका भी झुकाव है।



गन्ना तौलने का केन्द्र

केन्द्रीय समितियों का प्रबन्ध और संचालन भी उसी प्रकार होता है, जैसे प्रारम्भिक समितियों का। सभी सदस्य मिलकर एक साधारण सभा बनाते हैं। यह साधारण सभा कार्य के उचित और सफल संचालन के लिए 'संचालक मंडल' का चुनाव करती है। संचालक-मंडल का अध्यक्ष 'प्रबन्ध संचालक' अथवा प्रेसीडेन्ट कहा जाता है, जो समिति के प्रतिदिन के कार्यों की देखरेख समिति की नियमावली के आधार पर करता है। एक मंत्री का चुनाव भी किया जाता है, जो वैतनिक अथवा अवैतनिक रूप में कार्य की देखरेख करता है।

१९१९ के शासन-विधान के अनुसार सहकारिता राज्य के

विषयों की सूची में शामिल कर लिया गया। तभी से इस आन्दोलन के सफल संचालन का भार राज्यों पर है। इसलिए राज्यों के मंत्रीमण्डल में यह विषय भी एक मंत्री के अधीन होता है जो इसकी सफलता और संचालन के लिए उत्तरदायी होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य में सहकारी समितियों की देखरेख के लिए एक 'निबन्धक' (रजिस्ट्रार), होता है, जो शासकीय प्रधान होता है और इस सम्बन्ध में सभी अंतिम अधिकार उसी में निहित होते हैं। सहकारी आन्दोलन के विकास, प्रबन्ध एवं संचालन की जिम्मेदारी निबन्धक पर होती है। समितियों के झगड़ों के संबंध में अंतिम निर्णायक के अधिकार भी उसी को हैं। उसकी सहायता के लिए 'अतिरिक्त निबन्धक' भी होते हैं, जो विभिन्न ढंग के सहकारी कार्यों को अलग-अलग देखते हैं। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण राज्य को कई क्षेत्रों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र के सहकारिता-संबंधी कार्यों की देख-रेख एक 'उप निबन्धक' के अधीन होती है, जो अपने क्षेत्र को कार्यों के संबंध में पूर्ण उत्तरदायी है। एक क्षेत्र में कई जिले होते हैं। जिले में यह कार्य 'सहायक निबन्धक' अथवा 'जिला सहकारी अधिकारी' के अधीन होता है। उसकी सहायता के लिए एक 'अतिरिक्त जिला सहकारी अधिकारी' भी होता है। समितियों की संख्या के अनुसार प्रत्येक जिले को कई सर्किलों (उपक्षेत्रों) में बांट देते हैं और प्रत्येक सर्किल एक सहकारी निरीक्षक' के अधीन होता है। सहकारी निरीक्षक अपने क्षेत्र की सभी समितियों की देखरेख 'सहकारी पर्यवेक्षकों' की सहायता से करता है, जिनके कार्यक्षेत्र में लगभग ३० समितियां होती हैं।

सरकारी ढांचा

सहकारी समितियों में जनता का विश्वास और अधिक बढ़ा

देने के उद्देश्य से उनके वार्षिक आडिट (लेखा-निरीक्षण) का उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर रखा गया है। पहले आडिट का प्रवन्ध भी निवन्धक महोदय अपने अधीनस्थ अधिकारियों की सहायता से करते थे। लेकिन उत्तर प्रदेश में सन् १९५३ से आडिट का एक स्वतंत्र संगठन 'प्रधान आडिट अफसर' की देखरेख में स्थापित किया गया है जो एक क्षेत्रीय आडिट अफसर के सुपुर्द किया गया है। क्षेत्रीय आडिट अफसर यह कार्य आडिटरों की सहायता से करते हैं जो गांव-गांव में जाकर समितियों के हिसाव-किताव की जांच करते हैं।

गैर-सरकारी ढांचा

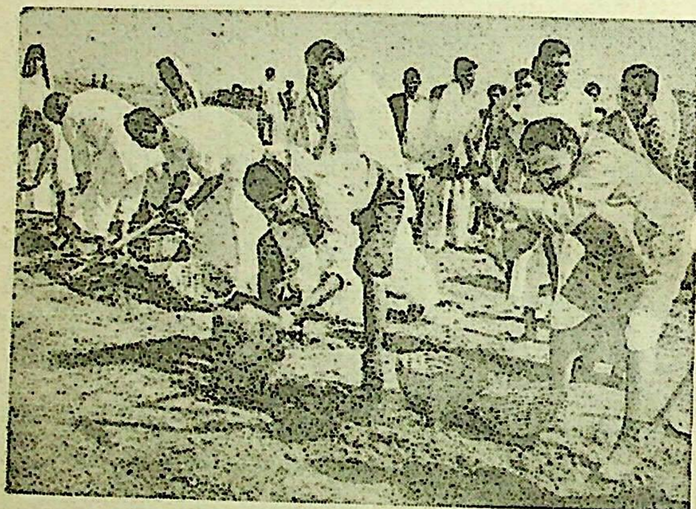
यद्यपि भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन का प्रादुर्भाव सन् १९०४ के सहकारी एक्ट के अनुसार हुआ, तथापि प्रारम्भ से ही इसे जनता का आन्दोलन वनाने का प्रयास होता रहा है। हरएक स्तर पर यह प्रयत्न किया गया है कि समितियों का प्रवन्ध एवं संचालन उनके प्रतिनिधियों द्वारा ही हो। लेकिन आरम्भिक समितियों के स्तर पर ही यह सम्भव हो सका। इससे आगे के स्तरों पर सदस्यों में प्राविधिक ज्ञान की कमी के कारण प्रवन्ध में कुछ सरकारी नियंत्रण भी रखना आवश्यक समझा गया। इस कारण प्रारम्भिक समितियों तथा क्षेत्रीय संघों का प्रवन्ध पूर्ण-रूपेण गैर-सरकारी लोगों के हाथ में है। इस स्तर की हरएक समिति एक सभापति अथवा प्रवन्ध-संचालक चुन लेती है, जो इसके प्रतिदिन के कार्यों की देख-रेख करते हैं। लेकिन जिला-स्तर पर एवं राज्य-स्तर पर इन समितियों का प्रधान कोई पदेन सरकारी अफसर होता है। जिला-स्तर पर भी यह कार्य अब गैर-सरकारी व्यक्तियों के हाथ में आने लगा है। विशेषतः जिला सहकारी वैंक तथा जिला

सहकारी संघों का प्रवन्ध गैर-सरकारी लोगों के हाथ में हैं; फिर भी यह व्यवस्था अभी अपने आरम्भिक रूप में है और रोज-रोज का काम बहुत-कुछ सरकारी कर्मचारियों की सलाह से ही चलता है।

रिज़र्व बैंक की ग्रामीण ऋण-पर्यवेक्षण की निर्देश समिति की सिफारिशों के अनुसार सहकारी समितियों में राजकीय हिस्सेदारी का सिद्धान्त मान लिया गया है और विभिन्न सरकारें इन समितियों की हिस्सेदार भी हो रही हैं। इसलिए फिर यह आवश्यक समझा गया है कि जबतक इन समितियों की आर्थिक स्थिति अच्छी न हो जाय, राज्य उनके प्रबन्ध में हाथ बंटावे। इस तरह फिर कुछ सरकारी नियंत्रण बढ़ रहा है। लेकिन प्रत्येक नीति का अन्तिम उद्देश्य यही है कि सहकारी आन्दोलन को जनता का आन्दोलन बनाया जाय। इसी उद्देश्य से उत्तर प्रदेश में सन् १९२९ में यू० पी० कोआपरेटिव यूनियन की स्थापना की गई। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य प्रदेश में सहकारी संस्थाओं का निरीक्षण, सहकारिता का प्रचार तथा आन्दोलन की प्रगति के हेतु सरकार को परामर्श देना है। यह यूनियन सहकारी पर्यवेक्षकों के चुनाव, पदोन्नति या उनकी कार्यवाहियों की भी देखरेख करती है।

सहकारी आन्दोलन सच्चे अर्थ में जनता का आन्दोलन बन सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि गांव या क्षेत्र के स्तर पर जो कर्मचारी सहकारी समितियों के पर्यवेक्षक या सहायक के रूप में चुने जायं, उनमें सहकारिता को जन-सेवा का अवसर मानने की भावना हो, शासन करने की नहीं। भारत में सरकारी या अर्द्ध-सरकारी सेवा के संगठन जनता पर आतंक जमाने के लिए, हर

कार्य में देर करने के लिए और जनता का शोषण करने के लिए इस्तेमाल होते रहे हैं। इस परिपाटी को तोड़ने के लिए काफी प्रयास करना होगा। सहकारी संगठन को सेवा का संगठन बनाने की नई परिपाटी चलानी होगी।



केन्द्रीय उपमंत्रियों तथा संसद-सदस्यों द्वारा सामूहिक श्रम

इसके अतिरिक्त सदस्यों में सहकारी शिक्षा का अधिक-से-अधिक प्रचार करना होगा और उन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों, सहकारी समितियों के काम करने की विधियों और उनके लाभों से पूरी तरह परिचित कराना होगा। इसी तरह नये-नये विचारों और संगठन के अनुभवों से तथा व्यावहारिक काम चलाते हुए सदस्यों में से ही स्थानीय नेता तैयार होंगे, जो सहकारी आन्दोलन को जनता का आन्दोलन बना सकेंगे।

: ५ :

सहकारी समितियों का निर्माण और संचालन

सहकारिता काम करने की एक प्रणाली है, जिसका उपयोग हम अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते हैं। ये आवश्यकताएं स्थान, सामाजिक स्थिति, व्यवसाय आदि को देखते हुए अनेक प्रकार की होती हैं। इसीलिए सहाकारी समितियां भी अनेक प्रकार की होती हैं। कुछ समितियां ऐसी होती हैं जो देहात में रहनेवालों को सस्ते सूद पर कर्ज देती हैं, कुछ उनके लिए बीज, खाद और खेती के प्राप्त करने, फसलों को अच्छे दामों पर वेचने कुआं-तालाब बनवाने, अच्छे मवेशी प्राप्त करने और भूमि-सुधार करने आदि में सहायता देती हैं। कुछ समितियां पक्का मकान बनवाने के लिए पूंजी, ईंटें, सीमेंट तथा अन्य सामानों की व्यवस्था करती हैं। कुछ समितियां मजदूरों को संगठित कर उन्हें काम सिखाने और आय बढ़ाने में सहायता देती हैं। इन विभिन्न प्रकार की समितियों का संगठन आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार हो सकता है। परन्तु उनके मूल सिद्धान्त एक हैं, इसलिए विभिन्न समितियों के संगठन में बहुत-कुछ समता पाई जाती है।

किसी भी स्थान पर सहकारी समिति का निर्माण करने के लिए उस स्थान की पूरी स्थिति, वहां के रहनेवालों के आचार-विचार, रहन-सहन, व्यवसाय आदि का अध्ययन बहुत आवश्यक होता है। जिन गांवों में भूमि बहुत खराब हो, सिंचाई के साधन न हों, और उत्पादन कम होता हो, जहां बीमारी और रोग सा-

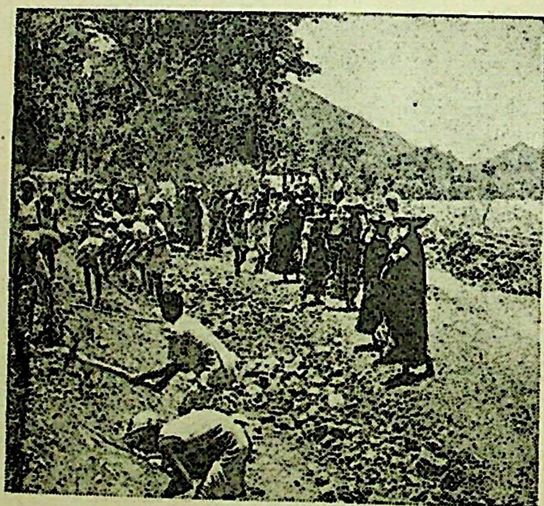
धारणतया फैलते हों, या जहां पर बहुत अधिक खर्चीली सामाजिक कुरीतियां हों वहां पर सहकारी ढंग से काम होने में असफलता की सम्भावना वहुत अधिक होती है। सहकारी समिति की असफलता का प्रभाव पास-पड़ोस के क्षेत्रों में बहुत खराब पड़ता है। ऐसी दशा में किसी क्षेत्र में सर्वप्रथम समितियां निर्माण करने के पहले उस स्थान का भली प्रकार अध्ययन कर लेना चाहिए और इस बात का पूरा निश्चय कर लेना चाहिए कि वह समिति उस स्थान पर सफल हो सकेगी या नहीं। जबतक किसी भी समिति की सफलता की पर्याप्त आशा न हो, तब तक उसे संगठित न करना चाहिए। सहकारिता जनता का एक आन्दोलन है, अतः समिति बनाने की इच्छा व प्रेरणा लोगों में खुद उठनी चाहिए। लोगों की समझ में यह बात आ जानी चाहिए कि सहकारी ढंग से काम करने से उनकी कौन-कौन-सी कठिनाइयां किस-किस प्रकार से हल हो सकती हैं। अगर वे इसे न जानते हों तो उन्हें इसके लिए शिक्षित करना जरूरी होता है। यह शिक्षा व्यक्तिगत ढंग से मिलने पर, छोटी-छोटी टोलियों में बात करने से और सामूहिक रूप से चर्चा करने से प्राप्त हो सकती है। यह आवश्यक है कि सहकारी समिति की उपयोगिता और उसके चलाने के लिए आवश्यक बातों का अधिकाधिक प्रचार हो। किसी भी समिति के बारे में जितना अधिक सहयोग लोग देते हैं उतनी ही अधिक उसकी सफलता निश्चित होती है। अतः कहीं भी सहकारी समिति संगठित करने के पहले यह देख लेना चाहिए कि लोग उसके महत्व, उपयोगिता, सिद्धान्त और कार्य-प्रणाली को अच्छी तरह समझ गये हैं या नहीं। उनके समझने के बाद ही लोग उस समिति में दिलचस्पी ले सकेंगे।

दूसरी बात समितियों के निर्माण के सम्बन्ध में ध्यान रखने की यह है कि समितियां सदस्यों की आवश्यकतानुसार बनाई जायं। जहां कहीं कर्ज की आवश्यकता है, वहां पर ऋण-समितियां बनें। जहां दूध और घी के बेचने या प्राप्त करने की आवश्यकता है वहां उस प्रकार की समितियां और जहां क्रय-विक्रय की समस्या है, वहां पर क्रय-विक्रय की समितियां ही ज्यादा कारगर होती हैं। इसलिए आवश्यक है कि इस बात की जानकारी की जाय कि किसी एक क्षेत्र में किस प्रकार की समिति सबसे अधिक उपयुक्त होगी, कहां तक वह सदस्यों की कठिनाइयों को दूर कर सकेगी? इस जानकारी के बाद उसी प्रकार की समिति का निर्माण करना उचित होगा।

किसी भी सहकारी समिति को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यह समिति अच्छे कारोबार के ढंग पर चले, जैसे दृढ़ आर्थिक दशा, मितव्ययिता, कार्य-कुशलता, सुप्रबन्ध, तात्कालिक लेखा-जोखा आदि। इन बातों के रहने से सहकारी समिति का काम ठीक ढंग से चलता है। सहकारी समिति बनाते समय यह भी देख लिया जाय कि उसका प्रबल विरोध तो नहीं होगा या उसकी निगरानी में कोई कमी तो नहीं होगी। सहकारी समिति बनाते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाय कि लोगों को उसकी उपयोगिता और कार्य-प्रणाली के बारे में पूरी जानकारी हो गई है। यह तभी सम्भव होगा जब उनके साथ बार-बार इसकी चर्चा की जाय और उन्हें समझाया जाय कि किस तरीके से वे सब आपस में मिलकर अपनी एक-सी जरूरत को पूरा कर सकेंगे। ऐसा समझने के लिए कई बार सभा करने की आवश्यकता होती है। अनुमान लगाया गया है कि भारतवर्ष जैसे देश में, जहां

अधिकांश जनता अशिक्षित है, कम-से-कम तीन बार सदस्यों से मिलकर उन्हें समझाने का प्रयास अनिवार्य होता।

सहकारिता का मूल सिद्धान्त यह है कि इसमें लोग अपनी मर्जी से, मनुष्यता के आधार पर, बराबरी के दर्जे पर सम्मिलित होते हैं और ईमानदारी और मितव्ययिता का पालन करते हुए स्वावलम्बी ढंग से जनतांत्रिक प्रबन्ध द्वारा अपनी सबकी एक-सी समस्याओं को हल करते हैं। इन्हीं सिद्धान्तों पर सहकारी समिति का निर्माण होता है। सहकारी समितियों में अपनी इच्छा से



सामूहिक श्रम में स्त्री-पुरुष सबका समान योग

शामिल होने और निकल जाने की पूरी स्वतंत्रता होती है। सोसाइटी अगर चाहती है तो अवश्य इनके भर्ती होने और निकलने पर प्रतिबन्ध लगा देती है। सोसाइटी में सभी सदस्य धन के आ-

धार पर नहीं चरित्र के आधार पर शामिल होते हैं। सदस्यों को चुनने में इस बात का ध्यान रखा जाय कि वे मेहनती हों, ईमानदार हों, मितव्ययी हों, आत्मसम्मानी हों और दूसरे के साथ मिल-जुलकर काम कर सकते हों। समिति को पूरा अधिकार है कि जिसमें ऐसे गुण न हों उन्हें न भर्ती करे और अगर भर्ती कर लिया हो तो उन्हें हटा दे।

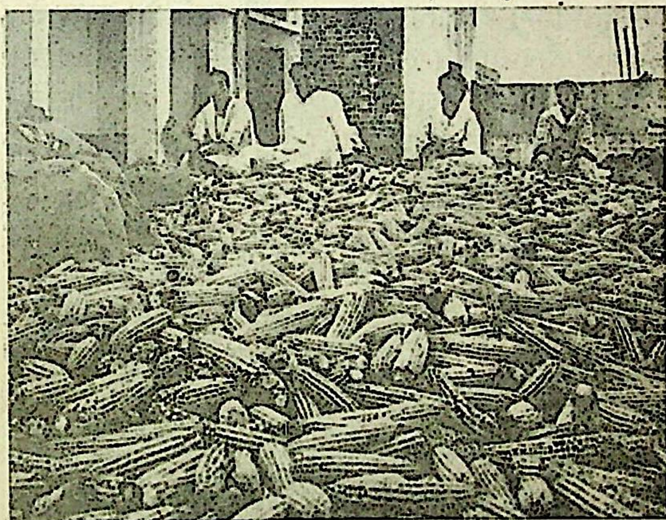
समिति में सभी सदस्य बराबर होते हैं। सबको समान रूप से अधिकार प्राप्त होते हैं। सभीको बराबर वोट देने का अधिकार होता है। वोट देने का अधिकार धन के आधार पर अवलम्वित नहीं होता। कोई सहकारी समिति दान या किसीकी सहायता की भूखी नहीं होती। समिति में कार्य करने का ढंग ईमानदारी का होता है। समिति में कोई भी कार्य अनैतिक ढंग से नहीं किया जा सकता। यह बिलकुल दूसरी बात है कि किसी समिति में निगरानी की कमी के कारण कोई एक व्यक्ति मनमानी करने लगे। ऐसी दशा में वह संस्था वास्तव में सहकारी नहीं रह जाती, बल्कि एक निजी व्यक्ति की संस्था हो जाती है। सहकारी समितियों में प्रजातांत्रिक प्रबन्ध आवश्यक है।

किसी भी सहकारी समिति को संगठित करते समय कुछ कागज तैयार किये जाते हैं। ये कागज उसी दशा में तैयार किये जायंगे जबकि सदस्यों को सहकारिता के बारे में काफी जानकारी हो चुकी हो और उन्होंने निश्चयकर लिया हो कि वे लोगसहकारी समिति बनाकर मिल-जुलकर अपनी कठिनाइयों को हल कर लेंगे। तैयार किये जानेवाले कागजों में एक प्रार्थना-पत्र रजिस्ट्री के हेतु होता है जो सदस्यों की ओरसे सहकारी विभाग के अध्यक्ष के नाम प्रेषित किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक

समिति अपने सदस्यों द्वारा पास की हुई उपनियमावली की दो प्रतिलिपियां भी भेजती है, जिसकी रजिस्ट्री हो जाने पर एक प्रति वापस आ जाती है और दूसरी रजिस्ट्रार के कार्यालय में प्रमाण-स्वरूप रख ली जाती है। इसके अतिरिक्त समिति अपनी सभा की कार्यवाही की एक प्रमाणित नकल भी भेजती है, जिसमें सोसाइटी बनाने, नियमावली पास करने, कारोबारी क्षेत्र का निश्चय करने, हिस्से की रकम और उद्देश्य तय करने, आदि के बारे में निश्चय होता है। इसके अतिरिक्त समितियां अपनी आवश्यकतानुसार सदस्यों को आवश्यक सूचना भी भेजती हैं, जैसे कर्जे की समितियां सदस्यों की हैसियत का नकशा भेजती हैं, चकबन्दी की समितियां सदस्यों के खेतों का नम्बर और नाप आदि भेजती हैं। इन कागजों के अलावा विभाग के कर्मचारी, जो समिति को संगठित करते हैं वे भी एक रिपोर्ट भेजते हैं। ये सभी कागज रजिस्ट्रार के कार्यालय में रोक लिये जाते हैं और रजिस्ट्री हो जाने पर रजिस्ट्री का एक प्रमाण-पत्र और नियमावली की एक प्रमाणित प्रतिलिपि वापस भेज दी जाती है।

समिति की रजिस्ट्री उपर्युक्त ढंग से हो जाने पर समिति एक रजिस्टर्ड संस्था हो जाती है और वह नये सिरे से अपने सदस्यों के सम्बन्ध में विभिन्न रजिस्टर तैयार कर लेती है। इसके बाद समिति लेन-देन कर सकती है, कर्ज ले सकती है, सामान खरीद सकती है, कर्ज बांट सकती है और सामान आदि बेच सकती है। समिति के सभी सदस्य मिलकर एक आम सभा बनाते हैं और समिति के सम्पूर्ण अधिकार इसे प्राप्त होते हैं। समिति अपने कार्य-संचालन के लिए एक कार्यकारिणी समिति बना लेती है, जिसमें चुने हुए सदस्य रखे जाते हैं। इस कार्यकारिणी समिति को

वही अधिकारप्राप्त होते हैं जो ग्रामसभा इसे देती है। सहकारी सभाओं का सम्पूर्ण प्रबन्ध जनतंत्रात्मक प्रणाली पर होता है, परन्तु



सहकारिता से उत्पादन में वृद्धि

इसकी निगरानी, जांच और निरीक्षण सहकारी-विभाग की ओर से होती रहती है। निगरानी का उद्देश्य सदस्यों द्वारा भलीभांति कार्य कराना होता है, उन्हें रास्ता दिखाना होता है और उन्हें उचित सलाह देना होता है, न कि किसी प्रकार से सदस्यों के अधिकारों को छीनना होता है। समिति के कार्य-संचालन में सम्पूर्ण अधिकार सदस्यों को प्राप्त होते हैं। इनका प्रयोग वे बहुमत द्वारा करते हैं।

सहकारी समितियां व्यावसायिक संस्थाएं होती हैं। इसके

लिए उन्हें धन की आवश्यकता होती है। यह धन आरम्भ में सदस्यों द्वारा जमा किये गए हिस्सों से मिलता है। उसके बाद अमानतों, विभिन्न कोषों, सहायता चन्दों और बाहरी कर्जों से समिति की धन की आवश्यकता पूरी की जाती है। बाहर से कर्ज़ लेने के लिए समिति को बैंक में हिस्सा लेना पड़ता है और अपनी साख निश्चित करानी पड़ती है। उस कर्ज़े को आसान किस्तों में वापस करने की सुविधा होती है। समिति इस प्रकार से प्राप्त हुए धन को अपने कारबार में लगाती है और सदस्यों को लाभ पहुंचाती है।

जो समितियां कर्ज़े का कारोबार करती हैं वे अपने सदस्यों को निजी जमानत के आधार पर कर्ज देती हैं। उस कर्ज़े का दुरुपयोग न हो, इसलिए कर्ज़ा सदस्य की साख के अन्दर और दो मेम्बरों की जमानत पर दिया जाता है। सहकारी समितियां सेवा करने के लिए होती हैं न कि मुनाफा कमाने के लिए। इसलिए समितियों में लाभ-वितरण पर एक सीमा लगा दी गई है। सहकारी समितियों में साधारणतः लाभ हिस्सों पर लगाये गए धन पर १० प्रतिशत से अधिक नहीं दिया जाता। यह नियम इसलिए बनाया गया है कि कोई धनी व्यक्ति लाभ के लालच में समिति में न आये। समितियां सेवा के लिए हैं और जिस समय वे सदस्यों की कोई कठिनाई दूर कर देती हैं, उसी समय वे सफल मानी जाती हैं। सहकारी संस्थाओं की सफलता सदस्यों को दिये गए अधिक मुनाफों से नहीं बल्कि सदस्यों को प्राप्त संतोष से आंकी जानी चाहिए।

भारतवर्ष में १९१२ में सहकारी समितियों का कानून पास हुआ, जिसके अनुसार विभिन्न प्रकार की समितियां बन सकती थीं।

परन्तु फिर भी देश में ८० प्रतिशत समितियां केवल कर्ज़ का कार्य करने के लिए बनीं, बाकी २० प्रतिशत अन्य प्रकार की समितियां थीं। इन कर्ज़वाली समितियों में ऋण और उत्पादन का सम्बन्ध केवल इतना ही रखा गया था कि सदस्य उत्पादन के लिए ऋण ले सकता था और फिर वर्ष में फसल तैयार होने पर किस्तों में अदा कर सकता था। अधिकांश कर्ज़ा देने की समितियां कर्ज़ा देने के अतिरिक्त उत्पादन में और कोई सहायता नहीं करती थीं, इसलिए सदस्य सहकारी समिति को एक कर्ज़ा देनेवाली संस्था समझते थे। ऐसी दशा में सदस्यों का सहकारी समितियों से अधिक सम्बन्ध नहीं रह सका। एक बार कर्ज़ा ले लेने के बाद समितियों की बैठकों में भाग लेना उन्हें अरुचिकर लगता था। बहुत-से सदस्य तो कर्ज़े की अदायगी में भी कोताही करते थे। इस दशा में उत्पादन में वृद्धि नहीं होती थी। ऐसी परिस्थिति में अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण-पर्यवेक्षण समिति की सिफारिश पर ऋण और उत्पादन का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत बृहत् सहकारी समितियों में सदस्यों के उत्पादन के व्ययों को और उनके उत्पादन की आय को ध्यान में रखकर सदस्य की साख रखी जायगी। छोटी-छोटी किस्तों में समय-समय पर किसान की जरूरत के अनुसार खाद-बीज या नकद के रूप में उत्पादन-कार्य के लिए ऋण दिया जायगा। इस प्रकार ऋण का उपयोग उत्पादन के कार्यों में उचित रूप से हो सकेगा।

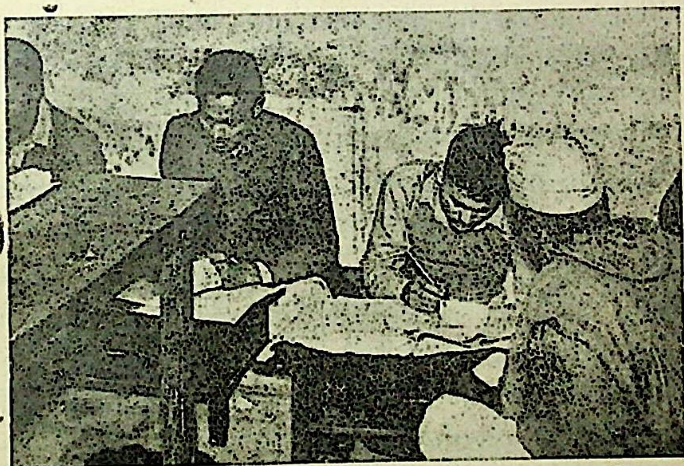
: ६ :

सहकारी समितियों का लेखा-जोखा

सहकारिता का उद्देश्य सच्चाई और ईमानदारी के रास्ते पर चलकर स्वावलम्बी ढंग से अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति करना है। यह कई तरह से हो सकती है, जैसे ऋण की व्यवस्था के लिए ऋण-समितियां, क्रय-विक्रय के लिए क्रय-विक्रय-समितियां, अच्छी खेती के लिए सहकारी कृषि-समितियां, गृह-निर्माण के लिए सहकारी गृह-निर्माण-समितियां आदि का निर्माण करने से। ये सभी समितियां अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति तभी कर सकती हैं जबकि वे अपना कार्य कारोबारी ढंग से और सेवा की भावना के साथ करें। एक प्रसिद्ध जापानी सहयोगी का कहना है कि "सहकारिता धर्म और व्यवसाय का समन्वय है।" धर्म होने के नाते इसमें सब कार्य सच्चाई, ईमानदारी और पारस्परिक सहायता की भावना से हों और व्यवसाय होने के नाते व्यावसायिक दृष्टिकोण होना चाहिए। तभी एक सहकारी संस्था सफल हो सकती है।

चूंकि सहकारी समितियां व्यावसायिक संस्थाएं होती हैं, इसलिए इनका हिसाब-किताब उचित ढंग से और पूरा-पूरा ठीक रखने से कोई गड़बड़ी नहीं होने पाती। अगर कोई भूल-चूक हिसाब में या पैसे में हो तो वह फौरन पकड़ में आ जाती है। हिसाब साफ रखने से यह पता चलता रहता है कि किन-किन मदों में हानि या लाभ हो रहा है, किन-किन उपायों द्वारा उनको रोका या बढ़ाया

जा सकता है। अगर किसी मद में हानि होती है तो वह जल्दी मालूम हो जाती है और अधिक हानि नहीं होने पाती। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार सामाजिक सम्पत्ति का दुरुपयोग आसानी से सम्भव नहीं होता। हिसाब-किताब ठीक ढंग से रखने से सदस्यों में सहकारी समिति के प्रति विश्वास रहता है और वे अपने तन-मन-धन से उसे सफल बनाने का प्रयास करते हैं।



सहकारिता-केंद्र में हिसाब-किताब का काम

किसी भी व्यवसाय का कार्य-संचालन चाहे कितनी ही ईमानदारी के साथ क्यों न किया जाय, फिर भी यह आवश्यक होता है कि उसके आय-व्यय, पूंजी व जिम्मेदारी, हानि व लाभ का ब्योरा रखा जाय। ऐसा होने से हर समय और स्थिति की ठीक-ठीक जानकारी होती रहती है। धन का दुरुपयोग नहीं होता और व्यवसाय से पूरा-पूरा लाभ मिलता है। हिसाब-किताब रखने से आय के

अनुसार नियोजित ढंग से व्यय किया जा सकता है। इसकी आवश्यकता अपने व्यक्तिगत जीवन में भी हर समय पड़ती है। व्यावसायिक संस्थाओं में इसके महत्व का कहना ही क्या ?

जबतक हिसाब-किताब अच्छे ढंग से नहीं रखा जाता तबतक असली हालत का पता नहीं होता, सदस्यों में विश्वास नहीं होता और वे अपना पूरा सहयोग नहीं देते, जिससे समितियां नहीं चल पातीं।

सहकारी समितियों में हिसाव-किताव रखने का अपना नियम है। अगर उन नियमों का पालन किया जाय तो हिसाव-किताव में कोई त्रुटि जल्दी नहीं हो सकती। सहकारी समितियों में हिसाब-किताव उस व्यक्ति के द्वारा लिया जाता है, जिसे 'सेक्रेटरी' कहते हैं। यह सेक्रेटरी सदस्यों में से ही एक होता है। उसे समिति के हानि-लाभ, सफलता-असफलता की चिन्ता होती है। ऐसा सदस्य सब सदस्यों की ओर से उनके हितों को ध्यान में रखते हुए हिसाब लिखता है और किसी भी त्रुटि को फौरन पकड़ लेता है। ऐसा करने से किसी भी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती और समिति अपने उद्देश्य में सफल होती है। इसके अतिरिक्त एक-दूसरे व्यक्ति को खजांची चुना जाता है, उसके पास तहवील (पूंजी) रखी जाती है। यह खजांची समिति के हित में कार्य करता है। सेक्रेटरी और खजांची के पद को सदैव पृथक्-पृथक् व्यक्तियों को दिया जाता है। सहकारी समितियों में यह आवश्यक है कि दिन-प्रतिदिन नकद और सामान के आने और जाने का विवरण रखा जाय। यह ब्योरा बही-खाते पर नकदी के लिए और स्टाक रजिस्टर पर सामान के लिए किया जाता है। यह आवश्यक है कि सहकारी समितियों का हर प्रकार का लेन-

देन सबकी जानकारी में सभा की अनुमति से किया जाय और उसकी एक सनद अलग से सदस्यों की पास बुक पर कर दी जाय। ऐसा होने से वाद किसी प्रकार की कठिनाई साधारणतया नहीं हो पाती। सहकारी समितियों में तहवील की सीमा पर वन्धन होता है, जिससे अधिक तहवील खजांची अपने पास नहीं रखता। यह सीमा समिति के कारोवार और खजांची की प्रतिष्ठा के अनुसार तय की जाती है।

सहकारी समितियों में हिसाव-किताव उसी भाषा में लिखना चाहिए, जिसे अधिकांश सदस्य जानते और समझते हैं। हिसाव-किताव सदैव रोशनाई से लिखना चाहिए, ताकि आसानी से बदला न जा सके। जहां कहीं अंगूठा-निशान लिया जाय वहां अंगूठा लगाने की स्याही ही इस्तेमाल की जाय और किसी जिम्मेदार व्यक्ति से उसे प्रमाणित करा दिया जाय। लेखे-जोखे में काट-पीट नहीं होनी चाहिए। किसी अक्षर को मिटाना या वदलना गलत होता है। अगर कोई त्रुटि हो जाय तो उसे काटकर दुबारा लिखना और हस्ताक्षर कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त समिति के रजिस्टरों के सभी पृष्ठों पर नम्बर पड़ा रहना चाहिए, ताकि उनमें से कोई पन्ना निकाला न जा सके। समिति में सभी रसीदों, पुरनोटों तथा रजिस्ट्री के प्रमाण-पत्र और नियमावली आदि को बहुत हिफाजत से रखना चाहिए।

सहकारी समितियों में आवश्यकतानुसार विभिन्न बहियां रखी जा सकती हैं। परन्तु सभी सहकारी संस्थाओं का एक ध्येय और हिसाब-किताब लिखने का एक तरीका होने के कारण बहुत-से लेखे-जोखे के कागज़ सभी समितियों में एक-से होते हैं। ये कागज मुख्यत: ये हैं—

किताब कार्यवाही—इसमें सदस्यों की हर प्रकार की सभाओं के निर्णयों का व्यौरेवार विवरण रहता है। समिति में किसी भी लेन-देन या सदस्यों द्वारा किये हुए निर्णय की मान्यता तभी तक है जबतक उसका उल्लेख किताब कार्यवाही में मौजूद हो। यह बहुत ही आवश्यक पुस्तक होती है।



सरकार द्वारा बढ़िया बीज का वितरण

आय और व्यय का रजिस्टर—इसर रजिस्टर में प्रतिदिन की आय और व्यय का व्यौरेवार हिसाब रहता है और प्रत्येक दिन के अन्त में रोकड़ का स्थान होता है। इस रजिस्टर को पूरा रखने से कभी हिसाब-किताब में गड़बड़ी नहीं होती।

जहां सेक्रेटरी कम पढ़ा-लिखा हो, वहां लेन-देन का हिसाब एक आसान रजिस्टर में, जिसे रोकड़ा बही कहते हैं, रख लिया जाता है और बाद में उसका विवरण आय-व्यय पुस्तक में कर दिया जाता है।

खाता (लेजर)—इसमें प्रत्येक व्यक्ति या संस्था का, जिससे कारोबार किया जाता है, अलग-अलग खाता रहता है। इस खाते से उसके लेन-देन का पता चलता है, जिससे गलती नहीं होने पाती। सदस्यों का रजिस्टर, बैंक का रजिस्टर, अमानतों का विवरण तथा लगाये हुए रुपयों का हिसाब अलग-अलग होता है।

सदस्यों का रजिस्टर—इस रजिस्टर में प्रत्येक सदस्य की भरती, उसकी भरती की मंजूरी, वारिस का विवरण, सदस्यता निकलने की तारीख आदि रहती है। अगर यह रजिस्टर पूर्ण रूप से रखा जाता है तो भारतवर्ष के सभी दीवानी न्यायालयों में उसमें दिये हुए विवरण को प्रामाणिक माना जाता है।

स्टाक बुक—इसमें सोसायटी के सामानों का विवरण रहता है। कौन सामान कब और कितना आया और कब और कितना निकल गया या खर्च हुआ।

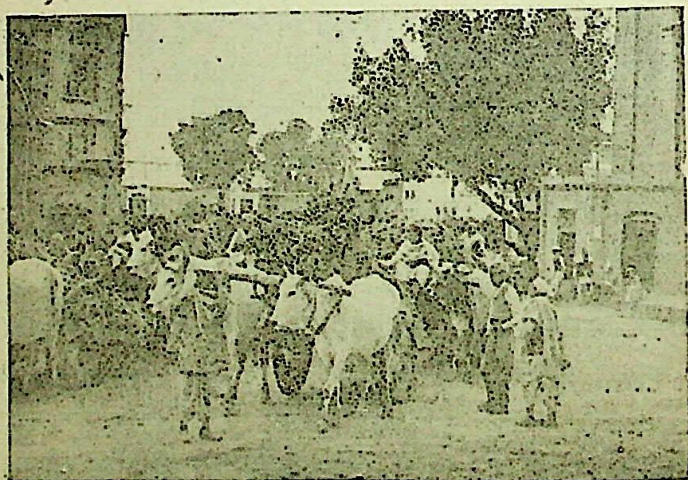
अन्य बहियां—सहकारी समितियों में आवश्यकतानुसार अन्य बहियों का प्रयोग किया जाता है, जैसे कर्जे की सहकारी समिति के लिए यह आवश्यक है कि सदस्यों की हैसियत का एक रजिस्टर, सदस्यों के जमीनदारों का एक रजिस्टर, दरख्वास्त कर्जा, पुरनोट आदि रखा जाय। इसी प्रकार एक बड़ी सहकारी समिति में हैसियत रजिस्टर, खेती के औसत खर्चे का रजिस्टर, सदस्यों की साख (क्रेडिट) का रजिस्टर, सदस्यों की अमानतों का रजिस्टर, आदि रखने पड़ते हैं। ये बहियां आवश्यकता-

नुसार घटाई और बढ़ाई जा सकती हैं।

समितियों में एक गार्ड फाइल चालान, रसीदें, प्रमाणपत्र आदि रखने के काम में लाई जाती हैं।

सदस्यों की पास बुक—यह समितियों की नहीं, बल्कि सदस्यों की एक पुस्तक होती है। यह त्येक सदस्य को अलग-अलग दे दी जाती है और उसमें उसके लेन-देन का पूरा विवरण लेन-देन के समय कर दिया जाता है। इसके सदस्य के पास अपने लेन-देन का सबूत रहता है, जिसे वह स्वयं पढ़ या पढ़वा सकता है। अगर कोई त्रुटि होती है तो वह फौरन दूर हो जाती है।

प्रत्येक समिति में साल के अन्त में उसके सालभर के तमाम



सहकारी कार्यों द्वारा समृद्धि

हिसाबों का व्यौरा तैयार किया जाता है, इसे सालाना नक्शा कहते हैं। इसमें सोसायटी के सालभर की आय व व्यय, साल के

अन्त की पूंजी व जिम्मेदारी, नंफा और नुकसान के विवरण आदि का नक्शा तैयार होता है। ऐसे तमाम नक्शे छोटे क्षेत्रों के आधार पर जोड़ दिये जाते हैं, फिर उन्हें जोड़कर जिले का और फिर जिले के स्तर पर जोड़कर राज्य के स्तर पर सभी सहकारी समितियों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। विभिन्न राज्यों के नक्शे जब जोड़ दिये जाते हैं तो देश भर में सहकारी आन्दोलन की प्रगति की जानकारी हो जाती है। ये सालाना नक्शे साल के अन्त में अर्थात् ३० जून के बाद अगले ३-४ महीनों के अन्दर बना लिये जाते हैं। जब ये नक्शे तैयार हो जाते हैं तब विभाग के द्वारा नियुक्त किये हुए आडिटरों द्वारा आडिट होता है और नक्शों के अनुसार प्राप्त हुए लाभ को नियमपूर्वक वितरण करने के लिए और भविष्य में कार्य करने के लिए वार्षिक बैठकें की जाती हैं। ऐसा होने से सदस्यों में संतोष बढ़ता है।

कितनी ही उपयोगी सहकारी संस्था क्यों न हो, सदस्यों को तबतक उसमें विश्वास नहीं होता और न वे पूरा सहयोग ही देते हैं, जबतक उस समिति का हिसाब-किताब ठीक ढंग से न रखा जाय और उन्हें वह हिसाब समझाया न जाय। सहकारी समितियों का हिसाब-किताब इतना साफ होना चाहिए कि लोगों को उनमें अपना धन लगाने और उनकी मार्फत कारोबार करने में पूरा-पूरा इतमीनान हो।

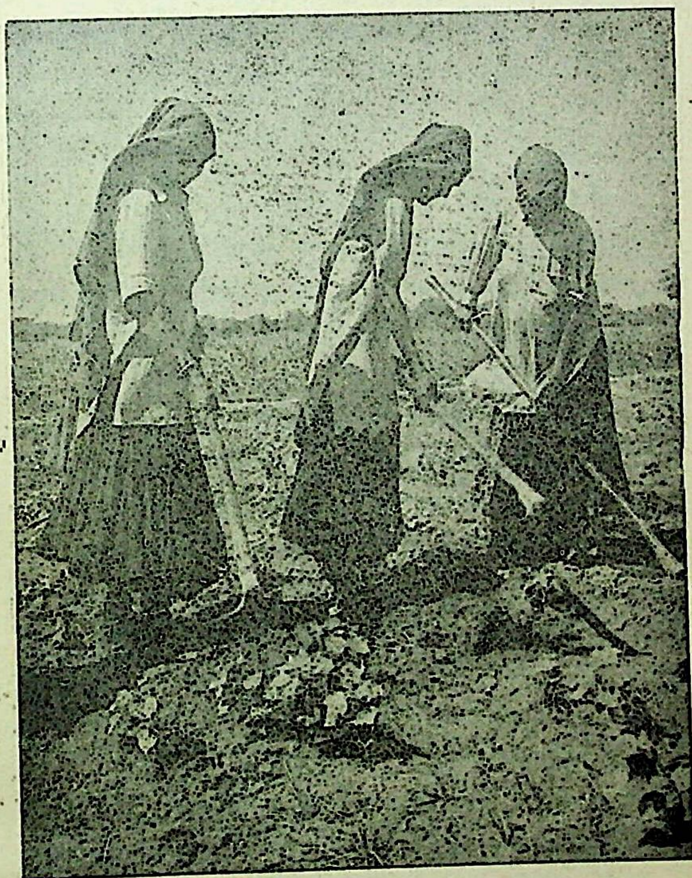
: ७ :

विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियां

सहकारिता का उद्देश्य अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति करना होता है। यह आर्थिक उन्नति अनेक तरीकों से हो सकती है, जैसे, उत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं के क्रय-विक्रय में शोषण की रोकथाम, उत्पादन के लिए साधनों का जुटाव और उनके अधिकतम उपयोग, स्वास्थ्य-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति, कर्ज को प्राप्त करने में महाजनों के शोषण से बचाव, अच्छी उन्नतिशील खेती आदि। इन तरह-तरह की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तरह-तरह की समितियां बन सकती हैं। आज हमारे सामने सामाजिक जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसमें सहकारिता का उपयोग न किया जा सके।

सहकारी समितियों का विभाजन बहुत-से विशेषज्ञों ने अपने-अपने ढंग से किया है। डाक्टर सी० आर० फे ने यह विभाजन चार प्रकार से किया है—(१) सहकारी बैंक, (२) कृषि की समितियां, (३) कर्मचारियों की सहकारी समितियां और (४) सहकारी भण्डार। इस विभाजन में सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें गृह-समितियों और बीमा की समितियों के लिए कोई स्थान नहीं है। आजकल उनका इतना अधिक महत्व है और वे ही इस विभाजन में शामिल नहीं है। डाक्टर फे ने एक दूसरा विभाजन किया है जो इस प्रकार है—(१) उपभोक्ता सहकारी भंडार, (२) गृह-समितियां, (३) पेशेवरों की सहकारिता, जिसमें शहर

की कर्जे की समितियां भी शामिल है और (४) खेती की समितियां जिसमें गांव की कर्जे की समितियां शामिल हैं। इस विभाजन



महिलाओं में सहकारिता की भावना

में दो बहुत बड़ी कमियां हैं—(१) इसमें कर्जे जैसे विषय को

समुचित अलग स्थान न देकर उत्पादक की श्रेणी में रखा गया है और (२) उपभोक्ता भंडार को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया गया है।

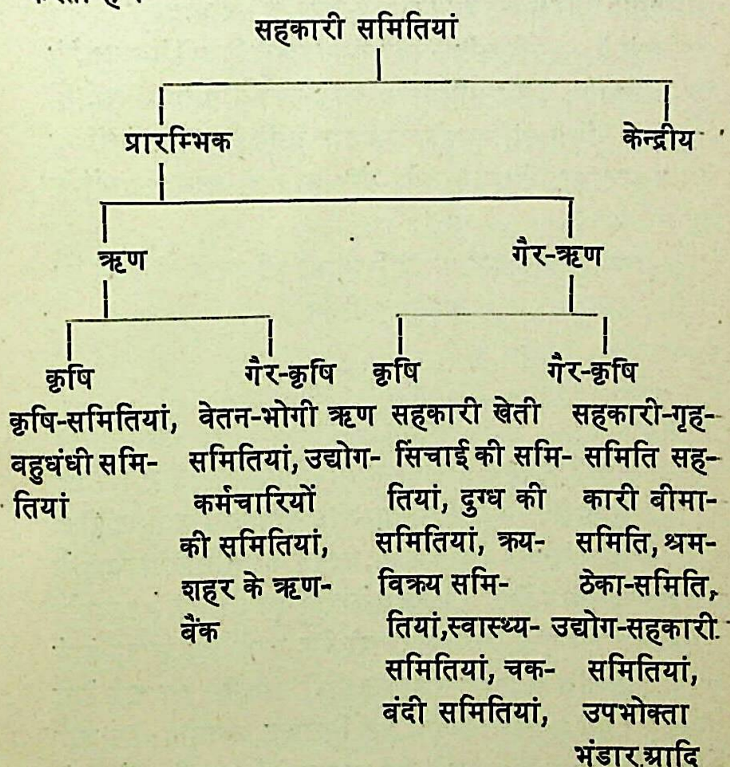
रोम की अन्तर्राष्ट्रीय कृषि-संस्था ने इसका विभाजन निम्न प्रकार से किया है—

(१) ऋण, (२) उत्पादन, (३) उत्पादन और बिक्री, (४) खरीदारी और (५) बिक्री।

इस विभाजन में भी गृह-समितियों का कोई स्थान नहीं है। समितियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण ऋण और कृषि के दो मुख्य विषयों के आधार पर होना चाहिए। अतः इन समितियों का विभाजन जिस प्रकार किया जाता है, वह सामने के पृष्ठ पर देखिये।

मोटे तौर से सहकारी समितियां दो प्रकार की होती हैं—(१) प्रारम्भिक और (२) केन्द्रीय। प्रारम्भिक समितियां वे हैं, जिनमें केवल व्यक्तिगत सदस्य होते हैं और केन्द्रीय समितियां वे है, जिनकी सदस्य प्रारम्भिक समितियां होती हैं। व्यक्तिगत सदस्य भी केन्द्रीय समितियों के सदस्य होते हैं। प्रारम्भिक समितियों का विभाजन ऋण और ग़ैर-ऋण दो भागों में किया जा सकता है। ऋण-समितियां वे हैं जो ऋण देने का कार्य करती हैं। ये कृषि की हो सकती हैं और गैर-कृषि की भी। कृषि-ऋण की समितियां वे हैं जो खेती के कार्यों के लिए कर्ज देती हैं, जैसे गांव की कर्जे की प्राइमरी समितियां, बहुधंधी सहकारी समितियां आदि। दूसरी समितियां ग़ैर-कृषि की होती हैं और इसमें वेतन-भोगी कर्मचारियों की समितियां, उद्योग-कर्मचारियों की समितियां आदि शामिल हैं। शहर में इसी प्रकार की समितियों द्वारा कर्जे के

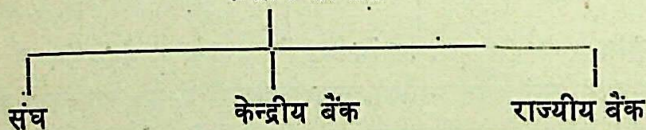
मिलने की सहूलियत होती है। गांव में अधिकतर ऋण-समितियां हैं। जहां ऋण-समितियां नहीं हैं, वहां बहुधन्धी सहकारी समितियां हैं। वे भी अधिकतर कर्जे के वितरण का ही कार्य करती हैं।



गैर-ऋण की समितियों को भी कृषि और गैर-कृषि दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। कृषि-गैर-ऋण समितियों में वे सभी समितियां आ जाती हैं, जो कृषि का कार्य करती हैं, मगर

ये कर्जे देने के अलावा दूसरा कार्य करती हैं। इसके अन्तर्गत सहकारी खेती, सिंचाई-समितियां, दुग्ध-समितियां, क्रय-विक्रय-समितियां, चकबन्दी-समितियां आदि आ जाती हैं। इन सभी समितियों में खेती के विषय में गैर-ऋण के तरीके द्वारा उन्नति की जाती है। इसके अतिरिक्त गैर-कृषिवाले विषयों में सहकारी गृह-समितियां, बीमा-समितियां, श्रम-ठेका-समितियां, उद्योग-सहकारी समितियां, उपभोक्ता-भंडार आदि हैं। समितियों का इस प्रकार का विभाजन ऋण और कृषि दो मुख्य विषयों के आधार पर है।

इसके अलावा केन्द्रीय समितियां भी कई प्रकार की होती हैं।



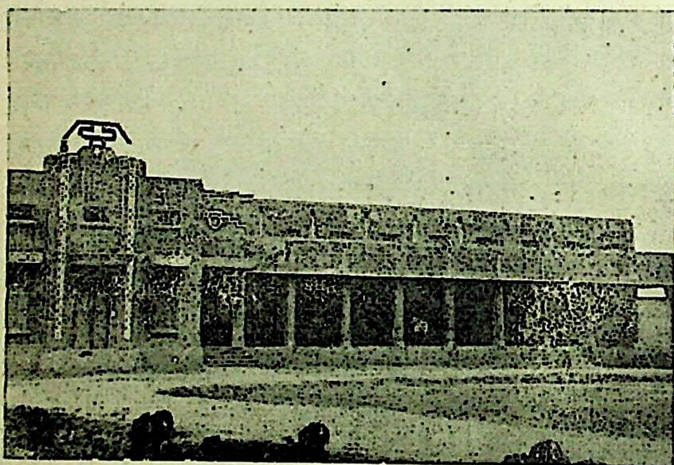
संघ वे हैं, जिनमें प्रारम्भिक समितियां कारोबार के लिए शामिल होती हैं। इन संघों में बीस-तीस समितियां शामिल होती हैं। इसी तरह केन्द्रीय बैंक में सभी प्रकार की समितियां ऋण के उद्देश्य से शामिल होती हैं। जब ये केन्द्रीय बैंक जिले के हेडक्वार्टर पर होते हैं तब इन्हें जिला सहकारी बैंक कहते हैं। इनका कार्य इनके कार्य-क्षेत्र में स्थित सभी सहकारी संस्थाओं का कर्ज देना होता है। ऐसे बहुत-से केन्द्रीय बैंक मिलकर राज्यीय बैंक बना लेते हैं। इस बैंक में राज्य के सभी सहकारी बैंक शामिल हो जाते हैं और अपने कार्य-संचालन की नीति में, आर्थिक सहायता में राज्यीय बैंक का सहारा लेते हैं। यह बैंक राज्य के स्तर पर सहकारिता का सबसे बड़ा बैंक होता है।

विशेष उद्देश्यवाली समितियों के स्थान पर गांवों में बहु-धंधी सहकारी समितियों के प्रचलित करने का प्रयास किया जाता है। बहुधंधी-समिति से यह लाभ है कि उसमें अधिक संख्या में लोग शामिल हो सकते हैं और प्रारंभिक समिति का काम अधिक व्यापक और सफल हो सकता है। अधिक सदस्य-संख्या से पूंजी भी अधिक हो सकती है और संगठन भी बड़ा और मजबूत हो सकता है। सदस्यों के मन में छोटी-छोटी अलग-अलग उद्देश्यवाली समितियों का कार्य समझने में कठिनाई हो सकती है। जैसे स्थानीय शासन के लिए पंचायत का एकमात्र संगठन सफल हो सकता है, छोटे-छोटे अनेक संगठन नहीं, वैसे ही कुछ लोगों के विचार में गांव के स्तर पर एक ही बहुधंधी सहकारी समिति होनी चाहिए।

व्यवहार में यह विचारधारा सफल नहीं होती। जब सदस्यों के हित और स्वार्थ भिन्न-भिन्न दिशा में होते हैं तो सहकारी संगठन मज़बूत इकाई नहीं बन पाता। भिन्न-भिन्न सदस्य अपने अलग-अलग हितों को पूरा करने के लिए संगठन को अलग-अलग या कभी-कभी विरोधी दिशा में खींचते हैं। जिन सदस्यों का हित-साधन नहीं होता वे समिति में अपनी दिलचस्पी कम कर देते हैं और समिति कमजोर पड़कर टूट जाती है। उदाहरण के लिए ऐसी बहुधंधी समिति, जिसमें दस किसान, दो बढ़ई, चार लुहार और दो जुलाहे हों, संगठित ढंग से काम नहीं कर सकती। इसलिए अलग-अलग आवश्यकतावाले लोगों की अलग-अलग समिति बनाने की ज़रूरत पड़ती है। यही कारण है कि उत्तरप्रदेश और भारत के कई दूसरे राज्यों में बहुधंधी समिति का सिद्धान्त मानते हुए भी दूध, घी, उद्योग-धंधों, खेती या ऋण की समितियां अलग-अलग हैं।

यह संभव है कि विशेष उद्देश्यवाली समितियों में एक गांव से दो या चार ही परिवार मिलें और सहकारी समिति बनाने की अल्पतम संख्या भी पूरी न हो, ऐसी हालत में निकट के कई गांवों के सदस्यों की एक विशेष उद्देश्यवाली समिति बनाई जा सकती है।

किसी समिति की सफलता व्यावहारिकता और कुशलता



गन्ना-क्षेत्रों में सहकारी समिति द्वारा प्रारंभ किया गया मदरसा

से चलनेवाले कारोबार और उससे होनेवाले लाभ पर निर्भर होती है। इसलिए समितियां बहु-उद्देश्यीय हों या विशेष उद्देश्यवाली, इन पर कोई रूढ़िवादी बात नहीं कही जा सकती। स्थानीय परिस्थिति और सदस्यों की इच्छा के अनुसार ही सहकारी समिति का संगठन होना चाहिए। यह अवश्य देखना होगा कि जैसी भी सहकारी समिति हो, वह सदस्यों की सेवा

ग्रौर सहायता कुशलतापूर्वक करती है या नहीं ग्रौर उसकी प्रगति बराबर हो रही है या उसमें शिथिलता ग्राने के लक्षण हैं। इसी प्रकार विभिन्न स्तरों की समितियों या संघों में ग्रापस में सहयोग होना चाहिए ग्रौर बीच के स्तर के सदस्य को सहयोग देने में सहायक होना चाहिए, बाधक नहीं। कभी-कभी विभिन्न स्तरों के कारण सेवा या सहायता पहुंचने में देर हो जाती है। नियमों में उचित संशोधन करके यह कठिनाई दूर की जा सकती है। प्रयत्न यह करना चाहिए कि सहकारिता-सम्बन्धी सेवा सदस्य के निकट-से-निकट स्थान तक या उसके द्वार तक उचित रूप से पहुंचती रहे।

: ८ :

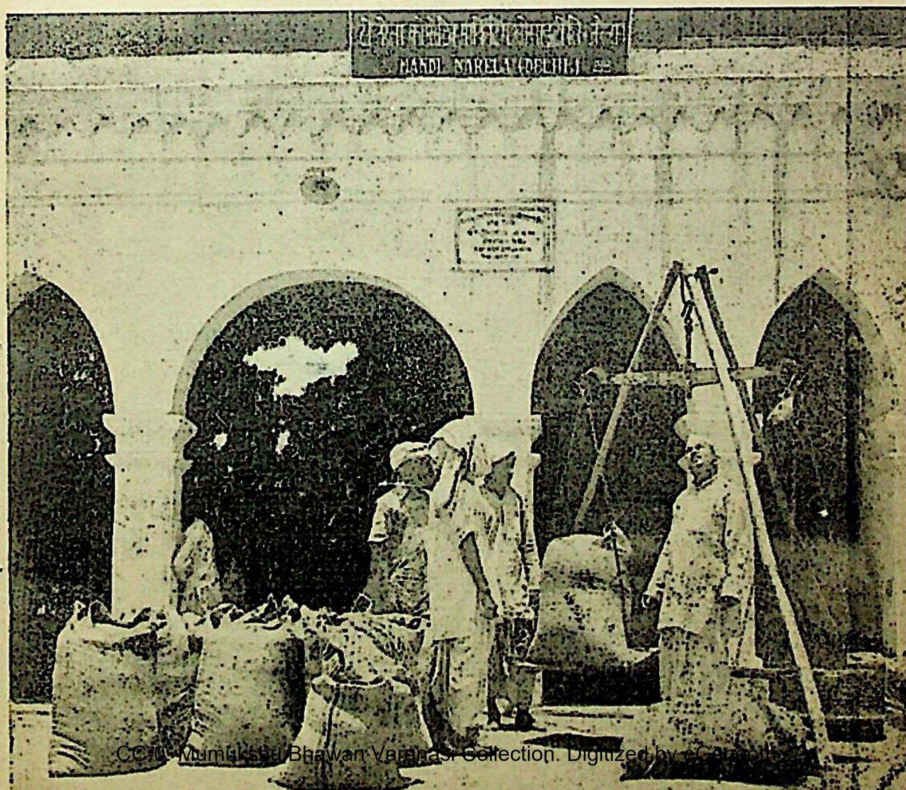
सहकारी क्रय-विक्रय-समितियां

अबतक जो बहुधन्धी समितियां देश में थीं, वे प्रायः ऋण देने का ही कार्य करती थीं और सदस्य की उपज की बिक्री की ओर कोई ध्यान नहीं देती थीं। फलस्वरूप किसानों को अपनी उपज मण्डियों के आढ़तियों के द्वारा बेचनी पड़ती थी, जहां जाने-माने तरीकों के अतिरिक्त गुप्त तरीकों से भी उनका गला घोंटा जाता था और फुटकर बिक्री का मुश्किल से ४० प्रतिशत ही उन्हें मिल पाता था। इस समस्या का निदान करने के लिए अखिल भारतीय कृषि-ऋण-पर्यवेक्षण-समिति ने ग्रामीण ऋण-व्यवस्था को कृषि-उत्पादन की हाट-व्यवस्था से सम्बन्धित करने की जोरदार सिफारिश की है, जिससे सहकारी ऋण का विस्तार बड़े पैमाने पर हो सके और किसान अपने उत्पादन की उचित कीमतें पा सकें। समिति ने इन समस्याओं का समावेश करके एक योजना बनाई, जिसको राज्यों के मंत्री और सहकारी कार्यकर्ताओं ने विभिन्न सम्मेलनों में स्वीकार किया और उसकी रूप-रेखा तैयार की। इस योजना का विस्तृत रूप हैदराबाद और जयपुर में हुए सचिवालयों और विभागीय अधिकारियों के सम्मेलनों में बनाया गया। इसी के अन्तर्गत सारे देश में सहकारी क्रय-विक्रय समितियां संगठित की जा रही हैं।

इन समितियों की स्थापना मण्डियों में ही की जाती है, जिसके लिए पहले से ही इन मण्डियों का पर्यवेक्षण कर लिया जाता है।

इस प्रकार की समितियों को सफल बनाने के लिए कर्मचारियों को विशेष रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है और उस क्षेत्र की जनता को भी विभिन्न साधनों द्वारा (हैण्ड बिल, पैम्फ्लेट, मीटिंग इत्यादि) इस योजना का ज्ञान कराया जाता है। प्रत्येक समिति के अन्तर्गत अनुमानतः २०० गांव रहते हैं। साधारणतया वे सभी गांव, जिनकी उपज उस मन्डी पर आती है, जहां समिति संगठित

दिल्ली के निकट नरेला की सहकारी क्रय-विक्रय-समिति



की जाती हें इसकें क्षेत्र में सम्मिलित कर लिये जाते हैं। प्रत्येक क्रय-विक्रय-समिति के हिस्से की पूंजी ५०,००० रु० होती है जिसमें २५,००० के हिस्से सम्बन्धित राज्य सरकार ऐसी समितियों को प्रोत्साहन तथा सहायता देने के लिए खरीदती है। राज्य-सरकार समिति केंकार्य-संचालन के लिए बने संचालक-मण्डल में कुछ सदस्य मनोनीत करेगी। उत्तर प्रदेश में सम्बन्धित परगना अधिकारी एवं तहसीलदार को आमतौर से मनोनीत किया जाता है। संचालक-मण्डल के अन्य सदस्य सदस्यों के द्वारा चुने जाते हैं। उन्हीं में से एक अध्यक्ष होता है, जिसका चुनाव प्रति वर्ष होता है। हर क्रय-विक्रय-समिति के कार्यक्षेत्र में सात से दस तक क्षेत्रीय ऋण-समितियां संगठित होंगी, जिनमें प्रत्येक के अन्तर्गत पच्चीस से तीस गांव रहेंगे। ये समितियां या तो वर्तमान बहुधन्धी समितियों को एक में मिलाकर या नये क्षेत्रों में नये सिरे से संगठित करके बनाई जायंगी। इनका प्रधान कार्यालय, जहांतक सम्भव होगा, विकास यूनियनों के सदर मुकाम में शामिल रहेगा। प्रत्येक क्षेत्रीय समिति उस क्रय-विक्रय-समिति की सदस्य होगी जिसके कार्य-क्षेत्र में वह स्थित होगी। इसके लिए उन्हें १०० रुपये के कम-से-कम १० हिस्से क्रय-विक्रय-समिति में खरीदने पड़ेंगे। क्षेत्रीय ऋण-समिति अपने कृषक-सदस्यों की कृषि-उत्पादन की सम्पूर्ण आवश्यकताओं के लिए ऋण देगी। यह ऋण इस शर्त पर दिया जायगा कि सदस्य अपनी उपज क्रय-विक्रय-समिति द्वारा बिकवायें। कहीं-कहीं यह कठिनाई सामने आती है कि किसान अपने भले को ठीक प्रकार से नहीं समझ पाते और इस कारण अपनी उपज आढ़तियों द्वारा ही बेचते हैं। इनको दूर करने के लिए कुछ क्षेत्रीय ऋण-समितियों ने तीन उपाय काम में लाये

हैं। पहले तो सहकारी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया और सदस्यों को भलीभांति समिति द्वारा माल वेचने से होनेवाले लाभों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया। दूसरे, अधिक ऋण उन्हीं सदस्यों को दिया गया, जिन्होंने समिति द्वारा अपना माल बेचा। तीसरे, उन सदस्यों पर, जिन्होंने उपज की पैदावार अच्छी होते हुए भी समिति से माल नहीं वेचा, प्रति सैंकड़ा ऋण ली हुई



गन्ने के उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि

राशि पर कुछ जुर्माना लिया गया। यद्यपि यह राशि अन्त में सदस्यों को मुनाफे में बट जाती है, परन्तु इस जुर्माने के कारण सदस्य क्रय-विक्रय-समिति के नियमों को तोड़ने से रुक जाते हैं। यहां यह बता देना आवश्यक है कि क्षेत्रीय ऋण-समिति के सभी सदस्य क्रय-विक्रय-समिति के व्यक्तिगत सदस्य होते हैं, जिसके

लिए उन्हें २० रुपये का एक हिस्सा समिति से खरीदना पड़ता है, जिसकी रकम दस छमाही में २ रु० प्रति छमाही के हिसाव से अदा करनी पड़ती है। आमतौर से यह रकम क्षेत्रीय ऋण-समिति के मंत्री ही वसूल करते हैं और क्रय-विक्रय-समिति के कार्यालय में जमा कर देते हैं।

क्रय-विक्रय-समितियां अपने सदस्यों की उपज कमीशन पर बेचती हैं। कमीशन की दर भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों पर निश्चित करती हैं। कुछ समितियां उस दर पर कार्य करती हैं, जो कमीशन मण्डी के अन्य आढ़ती लेते हैं और कुछ दर घटाकर कार्य करती हैं। यह अधिकार स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर करता है। परन्तु अधिक अच्छा यही है कि कमीशन की दर घटाकर अन्य आढ़तियों के साथ प्रतिस्पर्धा में न पड़ा जाय, बल्कि वर्ष के अन्त में माल बेचनेवाले सदस्यों को मुनाफे के रूप में अथवा किसी और रूप में कमीशन से प्राप्त आय में से कुछ लौटा दिया जाय। इससे अन्य आढ़तियों से सम्बन्ध भी नहीं बिगड़ेंगे और सदस्यों को भी लाभ होगा। माल बेचने पर समिति से किसान को जहां उनकी उपज की सही कीमत मिलती है, वहां वह अन्य फिजूल की कटौतियों से भी बच जाता है।

कमीशन पर माल बेचनें के अतिरिक्त क्रय-विक्रय-समितियां माल को बन्धक पर रखने की सुविधा भी देती हैं। बाजार-भाव अनुकूल न होने पर सदस्य समिति के पास अपनी उपज बन्धक रखकर बाजार-भाव से आई कीमत पर ७५ प्रतिशत मूल्य पेशगी समिति से ले सकता है और अनुकूल भाव होने पर अपनी इच्छानुसार उपज बेच सकता है और बिक्री से प्राप्त धन से क्षेत्रीय समिति का कर्ज, क्रय-विक्रय-समिति का कर्ज एवं कमीशन तथा

अन्य खर्चे चुका सकता है। इस प्रकार ऋण-समिति और क्रय-विक्रय-समिति के कार्यों में पूर्ण समन्वय हो जाता है।

कुछ क्रय-विक्रय-समितियां अपना कार्य-क्षेत्र कच्चे आढ़ती के कार्य तक ही सीमित नहीं रखती, वरन् पक्के आढ़ती का भी कार्य करती हैं। अर्थात् वे स्वयं माल बेचती और खरीदती हैं परन्तु इसके लिए बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। ऐसा कार्य सफलतापूर्वक तब किया जा सकता है, जबकि संस्था की मांग समिति के पास हो। कुछ समितियों ने जेल की सप्लाई का कार्य, और राज्यीय व केन्द्रीय संस्थाओं को सप्लाई का कार्य बड़ी सफलता से किया है। कृषि-उत्पादन में और अधिक सहयोग देने के लिए वे समितियां हरी खाद का बीज इत्यादि भी खरीदती और काश्तकारों को देती हैं।

इन सब कार्यों को सुविधापूर्वक करने के लिए और सदस्यों के आराम के लिए समितियां क्रय-विक्रय-केन्द्र (कलेक्शन डिपो) क्षेत्र की किसी और छोटी मंडी तथा गांव में खोल देती हैं। इससे समिति के कार्य में और आमदनी में वृद्धि होती है और काश्तकारों को भी सुविधा रहती है।

इन मुख्य कार्यों के अतिरिक्त क्रय-विक्रय-समितियां अन्य सहायक धन्धों, जैसे अनाज का संग्रह, वस्तुओं का श्रेणी-बद्ध करना तथा मकानों के निर्माण आदि कार्य भी करेंगी, सदस्यों को भंडार-गृहों (स्टोरेज) की सुविधा देंगी। इस कार्य के लिए समिति के पास २५,००० रु० की अनुमानित लागत का एक गोदाम होगा, ये समितियां आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करेंगी और आत्म-निर्भर होंगी, ये कच्चे आढ़तियों की भांति कार्य करेंगी और मण्डियों में प्रचलित नैतिक प्रथाओं को अपनायेंगी।

इनसमितियों को राज्यीय स्तर पर व्यापारिकसहायता देने के लिए राज्य की प्रमुख क्रय-विक्रय-संस्थाओं, जैसे उत्तरप्रदेश में प्रादेशिक सहकारी संघ, को भी शक्तिशाली बनाया जा रहा है, जिससे ये मण्डी-स्तर पर क्रय-विक्रय कर सकें। ये राज्यीय संस्थाएं क्रय-विक्रय-समितियों की तरफ से बाहरी व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित करेंगी और हाट-व्यापार के समाचार समितियों तथा उत्पादकों में प्रसारित करने के लिए एकत्र करेंगी।

सहकारी क्रय-विक्रय का कार्य हमारे देश में प्रायः नया-सा ही है, द्वितीय पंचवर्षीय आयोजन के अनुसार समितियां इसे काफी बड़े पैमाने पर करेंगी। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक समिति में पर्याप्त और कुशल कार्यकर्ता हों तथा समिति के हाथ में इतना काम हो कि वे अपना व्यवसाय का व्यय निकाल सकें और आर्थिक दृष्टि से सफलतापूर्वक कार्य कर सकें।

इस प्रकार संगठित सहकारी क्रय-विक्रय-समितियां सदियों सेसताये हुए किसानों को उनकी उपज के विक्रय में आवश्यक सुविधायें देंगी और देश के धन-धान्य की उपज बढ़ायेंगी। अतः सहकारी क्रय-विक्रय के संगठन को सफल बनाना सहकारी आन्दोलन के विकास का ही नहीं, राष्ट्र के विकास का महत्वपूर्ण अंग है।

: ६ :

सहकारी खेती

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से ही सहकारी खेती के सम्बन्ध में चर्चा चलनी प्रारम्भ हो गई थी। कुछ जगहों पर, जहां नई भूमि खेती के योग्य बनाई गई, सहकारी खेती भी प्रारम्भ की गई। उदाहरण के लिए झांसी एवं हस्तिनापुर को लिया जा सकता है। इसी प्रकार गाजीपुर जिले के कादीपुर ग्राम में भी सहकारी खेती प्रारम्भ की गई। कहीं पर वह असफल हुई और कहीं पर सफल। किन्तु नई प्राप्त की गई भूमि से स्वामित्व त्यागकर पहले से अधिकरण प्राप्त भूमि पर सहकारी खेती करना अधिक कठिन मालूम होता है अपने नागपुर-अधिवेशन में, जबसे कांग्रेस ने पूरे देश में सहकारी खेती का लक्ष्य बनाया है, सहकारी खेती के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया है। पक्ष एवं विपक्ष दोनों ओर के तर्क उपस्थित किये गए हैं। सहकारी खेती के मार्ग में निम्नलिखित कठिनाइयां हैं, जिनके आधार पर उसकी सफलता में सन्देह प्रकट किया जा रहा है।

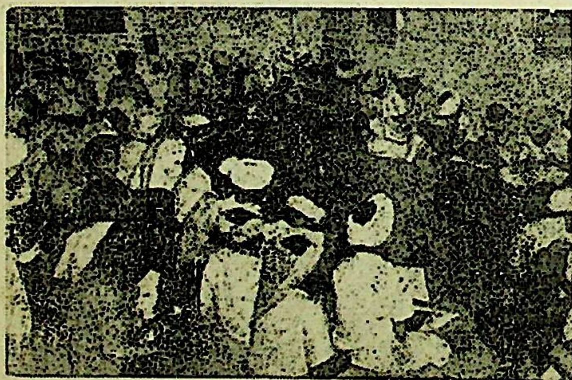
१. सहकारी खेती प्रारम्भ करने पर व्यक्तिगत उत्साह समाप्त हो जायगा, क्योंकि व्यक्तिगत लाभ की भावना समाप्त हो जायगी। इसलिए कृषि में उदासीनता की वृद्धि होगी।

२. अभी तक सहकारिता का साधारण कार्यक्रम सफल नहीं हुआ है। इसलिए सहकारी खेती के विशेष कार्यक्रम में और भी कठिनाइयां होंगीं।

३. व्यक्तियगत कृषि के समाप्त होने और सहकारी खेती के पूर्णतः सफल होने तक व्यक्तिगत उत्साह कम हो सकता है। उस दशा में देश का अन्न-संकट घटने के स्थान पर बढ़ जायगा, क्योंकि देश में आवश्यकता से थोड़ा भी अधिक अनाज नहीं है।

४. यह भी सम्भव है कि सहकारी खेती के मार्ग में स्थिर-स्वार्थी वर्ग बाधा उपस्थित करें, जिसके फलस्वरूप उत्पादन और घट जाय।

५. सहकारी खेती की उलझी हुई हिसाब-किताब की व्यवस्था भी एक बाधा है। देश में अशिक्षा अधिक है और अधिक संख्या में पढ़े-लिखे लोग नहीं मिल सकेंगे। किसानों का विश्वास उनमें होने में कठिनाई होगी। प्रबंध करनेवाले लोग भ्रष्टाचार के शिकार हो सकते हैं।



दिन में काम करने के बाद रात की पढ़ाई

६. प्रबंध करनेवालों के गलत निर्णय से सहकारी खेती में हानि हो सकती है। बड़े पैमाने पर सम्मिलित खेती होने के कारण

यह हानि विशेष आर्थिक कठिनाई ला सकती है।

७. आजकल किसान अपना जो भी श्रम खेती में लगाता है उसकी गणना बहुत ही कम करता है, किन्तु सहकारी खेती प्रारम्भ होने पर सबके श्रम का हिसाब होगा, इससे उत्पादन-व्यय और बढ़ सकता है।

८. आज खेती किसान के लिए जीवन-निर्वाह का एक साधन है। घर में चाहे एक व्यक्ति रहे, चाहे दस, सब खेती में लगे रहते हैं। इससे बेकारी नहीं मालूम पड़ती। किन्तु सहकारी खेती प्रारंभ होने पर यह बात भी समाप्त हो जायगी। जरूरत के अनुसार ही आदमी लगाये जायंगे। खेती की देखरेख तथा इसी तरह अन्य कार्यों के लिए भी पहले की अपेक्षा कम व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी। निराई, गुड़ाई आदमियों की जगह यन्त्रों से होने लगेगी। इस प्रकार भय है कि कहीं आरंभ में बेकारी की वृद्धि हो न जाय। अभी तक रोजगार देने के लिए इतने रास्ते नहीं खुले हैं कि बचे हुए सभी व्यक्तियों को आसानी से काम दिया जा सके।

९. किसान को अपनी भूमि से केवल आर्थिक सम्बन्ध नहीं होता, बल्कि भावात्मक सम्बन्ध भी होता है। वह अपनी भूमि को आसानी से छोड़कर सहकारी खेती के लिए राजी नहीं हो सकता।

१०. फ्रांस के एक अर्थशास्त्री ने कहा है कि एक आदमी को एक पत्थर का टुकड़ा देकर कहो कि वह टुकड़ा सर्वदा के लिए तुम्हारा हो गया तो वह व्यक्ति उसे चमन बना देगा और यदि एक बहुत ही उपजाऊ जमीन का टुकड़ा दे दो और कहो कि वह कुछ दिनों में तुमसे छीन लिया जायगा तो वह उसे पत्थर का टुकड़ा बना देगा।

ऊपर सहकारी खेती के सम्बन्ध में जो बातें कही गई हैं

उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

ये कठिनाइयां वर्तमान समाज-व्यवस्था और भूमि-वितरण की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए ही हैं। इनमें आवश्यक सुधार और तदनुकूल शिक्षा का प्रबंध करके इन कठिनाइयों पर विजय पाई जा सकती है और सहकारी खेती को बड़ा ही सबल और सफल सामाजिक आन्दोलन बनाया जा सकता है। किसान के साधनों और सुविधाओं को बढ़ाने के लिए सहकारी खेती, सहकारी क्रय-विक्रय, सहकारी ऋण और सहकारी शिक्षा की अधिकाधिक आवश्यकता है।

हमारे देश में खेती के सम्बन्ध में निम्नलिखित समस्याएं मुख्य हैं—

१. देश के अधिकांश भागों में जमींदारी समाप्त हो चुकी है, किन्तु अभी भी खेती-सम्बन्धी सुधार पूरे नहीं हुए हैं। चाहे राजनैतिक परिस्थिति हो चाहे सामाजिक न्याय की मांग हो, भूमि का उचित बंटवारा होना आवश्यक है। उचित बंटवारे के बाद प्रत्येक परिवार को ३-४ एकड़ से अधिक भूमि मिलना कठिन है। इस प्रकार भूमि के टुकड़े इतने छोटे होंगे कि उस पर व्यक्तिगत रूप से खेती करना संभव ही नहीं होगा।

२. हमारे देश में उत्तराधिकार का नियम ऐसा है कि बाप के मरने पर सम्पत्ति के ऊपर सभी पुत्रों का समान रूप से अधिकार होता है। इस प्रकार यदि एक व्यक्ति के पास आज ४०-बीघे खेत है और उसके चार लड़के हैं तो हरेक के लिए १० बीघे ही पड़ेगा। यदि इसी प्रकार लड़कों के भी लड़के हुए तो प्रत्येक को दो बीघे ही खेत मिलेगा। यदि कोई विशेष कानून न बनाया गया, तो खेत के टुकड़े इतने छोटे हो जायंगे कि उनपर व्यक्तिगत रूप से

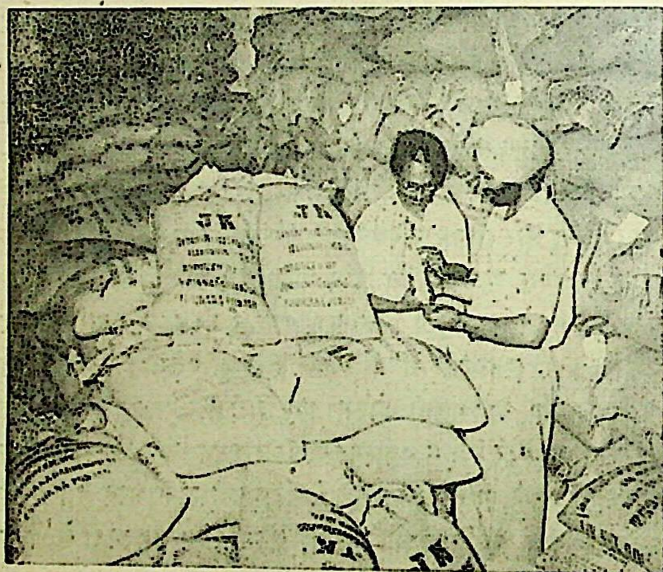
खेती करना कठिन हो जायगा। देश के कुछ विशेष भागों में और कुछ विशेष सम्प्रदायों (जैसे मुसलमान) जिनमें लड़कियों को भी भूमि में हिस्सा दिया जाता है, जमीन के टुकड़े और भी छोटे हो जाते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत खेती इस अल्पतम सीमा पर पहुंच गई है कि व्यक्तिगत खेती प्रायः असंभव है।

३. पहले बहुत लम्बे-चौड़े परिवार एक साथ मिलकर रहते थे। कई पुश्तों तक लोग पचासों की संख्या में साथ रहते और साथ-साथ खेती करते थे। बड़ा परिवार सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण था। किन्तु सामाजिक परिवर्तन के कारण बहुत-से लोगों का एक साथ मिलकर रहना कठिन हो गया है। इन कारणों से सम्मिलित परिवार टूटते जा रहे हैं। इसके अभाव में किसी-न-किसी प्रकार की सहकारी खेती को उचित स्थान देना ही पड़ेगा। रूस में खेती के केन्द्रीकरण से कितनी कठिनाइयां आई हैं, उससे हम परिचित हो गये हैं। हमारे देश में महात्मा गांधी प्रारम्भ से ही विकेन्द्रीकरण के पक्ष में रहे हैं, अतःसहकारी खेती ही एक ऐसा साधान है,जिससे सत्ता एवं धन का विकेन्द्रीकरण हो सकता है। सहकारी खेती से अपने सामाजिक विघटन की गति को कुछ हद तक रोका जा सकता है।

४. सहकारी खेती से गांव के साधनों को सम्मिलित कर किसान इस योग्य हो सकते हैं कि उन्हें आवश्यक बीज, खाद, औजार और प्राविधिक सहायता के पूरे-पूरे साधन मिल जायं और भूमि से अधिकाधिक पैदावार मिल सके।

इस प्रकार जिस तरह के सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के निर्माण का लक्ष्य देश के सामने है, वह सहकारी खेती द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। ये कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं, जिनके

अन्दर सहकारी खेती के अतिरिक्त दूसरा विकल्प देश के सामने नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें भी हैं, सहकारी



उच्चकोटि की मक्का के बीज

खेती के अपने कुछ ऐसे लाभ भी हैं, जिनपर ध्यान देना आवश्यक है। उनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

१. सहकारी खेती में व्यक्तिगत साहस एवं उत्साह बिल्कुल समाप्त हो जायगा, यह अनिवार्य नहीं। यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने खेत के अनुसार ही पैदावर का हिस्सा मिलेगा, और खेत पर उसका ही अधिकार रहेगा तो उसकी उपज में उसकी दिलचस्पी रहना स्वाभाविक है।

२. आज प्रत्येक व्यक्ति ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि कृषि के पुराने तरीके नई परिस्थितियों में अपर्याप्त हैं, नये तरीकों को अपनाना आवश्यक हो गया है। किन्तु नये तरीकों को अलग-अलग किसान नहीं अपना सकते, क्योंकि न तो उनके पास स्वयं साधन हैं और न इतनी क्षमता कि वे साधन आसानी से उपलब्ध हो सकें।

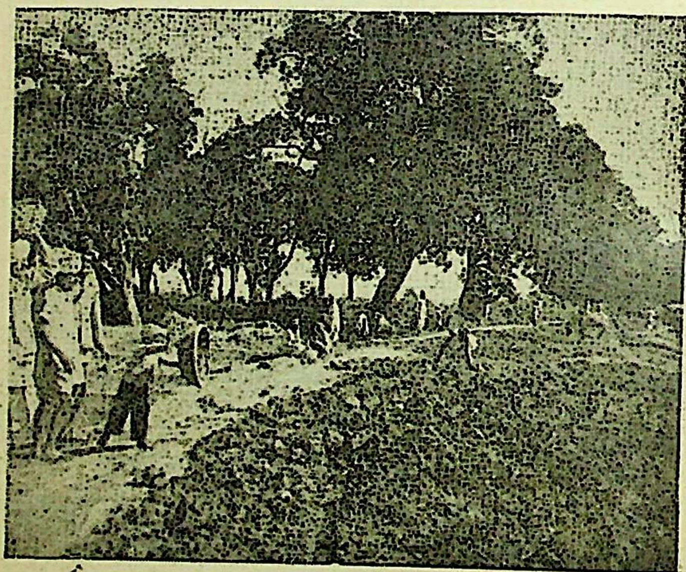
३. सरकार अथवा किसी भी एजेंसी के लिए यह सम्भव नहीं है कि इस प्रकार प्रत्येक छोटे-छोटे खेत पर सहायता पहुंचा सके। सहकारी संघों को हर तरह की सहायता देना सम्भव हो सकेगा। अतः खेती अस्त-व्यस्त न होकर और जम जायगी।

४. यह सम्भव है कि कुछ स्वार्थी लोग इस मार्ग में बाधा डालें। किन्तु यदि सरकार एवं जनता चाहे तो इन स्वार्थी लोगों से आसानी से निबटा जा सकता है।

५. हिसाब-किताब की व्यवस्था को सरल बनाया जा सकता है। यह भय कि इसमें बेईमानी या गबन आदि की ज्यादा सम्भावना रहेगी, ठीक नहीं। इस भय से सहकारिता को नहीं छोड़ा जा सकता, समय के दौरान में प्रत्येक धर्म एवं व्यवस्था में बुराइयां घुस आती हैं। उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। अधिकारियों के ऊपर नियंत्रण रखकर और जनता के अन्दर जागृति लाकर इसे बहुत-कुछ दूर किया जा सकता है।

६. सहकारी खेती में अव्यवस्था के कारण उत्पादन-व्यय बढ़ने की शंका की जाती है। किन्तु साधारणतया उत्पादन की इकाई जितनी ही छोटी होती है उतना ही उत्पादन-व्यय अधिक होता है। उत्पादन की इकाई बड़ी होने पर, व्यवस्था आदि पर खर्च काफी हो जाता है। इससे उत्पादन-व्यय भी कम हो जाता है।

७. कृषि के अन्दर आज भी बेकारी से बहुत-से कृषक साल में बेकार रहते हैं, किन्तु वह बेकारी ऐसी होती है कि वे अपने को दूसरे उद्योग-धन्धों में नहीं लगा सकते। थोड़ा-बहुत खेती का भी काम लगा ही रहता है। किन्तु सहकारी खेती हो जाने पर वे पूर्ण रूप से स्वतंत्र होकर गृह-उद्योग-धन्धों में लग सकते हैं। हमारे देश में गृह-उद्योग-धन्धों का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है।



सामूहिक श्रम द्वारा एक सड़क का निर्माण

८. किसान के मोह की चर्चा आएदिन होती है और कहा जाता है कि उसे अपनी भूमि से मुहब्बत होती है और वह उसे छोड़ना पसन्द नहीं करेगा। किन्तु यह मुहब्बत परिस्थिति से

उत्पन्न हुई मुहव्वत है, किसान की मूल प्रवृत्ति नहीं। १९३४-३५ में जब काफी सस्ती ग्रा गई थी, बहुत-से लोग ग्रपने खेतों को छोड़कर चले गये थे ग्रौर उन्होंने छोटी-छोटी नौकरियां कर ली थीं। बढ़ती हुई महंगाई एवं ग्रन्य उत्पादक कार्यों के ग्रभाव में किसान को ग्रपने खेत से प्रेम हो गया है, जो स्वाभाविक है। बिना किसी बल-प्रयोग के विनोबाजी के भूदान-यज्ञ में बहुत-से ग्राम मिल गये हैं। भूमि-सुधार-कानून पास हो जाने के बाद ग्रौर भी बहुत-से गांवों के लोग सहकारी खेती के लिए तैयार हो जायंगे, किन्तु प्रारम्भिक ग्रवस्था में साधन सहकारी समितियों की स्थापना पर ही जोर दिया जाता है। भूमि के ऊपर किसान का ही स्वामित्व वना रहेगा। साधन ग्रथवा सेवा-सहकारी समितियों की निम्नलिखित विशेषता होगी।

इनके द्वारा कृषि के साधनों, जैसे खाद, सिंचाई, कृषि-यन्त्र ग्रन्य प्रकार की पूंजी की व्यवस्था सहकारी समितियों के द्वारा होगी। यदि इनमें पूर्ण रूप से सफलता मिली एवं किसान ने ग्रपना लाभ देखा तो सहकारी खेती के ग्रन्दर खेतों को भी वह सम्मिलित कर सकेगा।

९. यह कहना कि सहकारिता पहले ग्रसफल हुई ग्रथवा उसका वांछित फल नहीं मिला, इससे ग्रागे भी वह ग्रसफल होगी ठीक नहीं है। एक गलत सिद्धांत यदि एक बार सफल भी हो जाय तो यह ग्राशा नहीं की सकती कि वह सर्वदा सफल होता रहेगा। उसी प्रकार एक सही सिद्धांत एक बार ग्रसफल हो जाय तो यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह सर्वदा ग्रसफल होगा। हमें उसकी ग्रसफलता के कारणों पर विचार कर उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए, न कि उस व्यवस्था का ग्रांख मूंदकर विरोध

करना चाहिए।

सहकारी खेती की पूर्ण सफलता के लिए कुछ आवश्यक परिस्थितियां हैं, जिनकी ओर भी ध्यान देना आवश्यक है।

१. अधिकांश जनता की पूर्ण स्वीकृति। जबतक जनता किसी कार्यक्रम को नहीं स्वीकार करती, उसका चलना कठिन है। देश की सबसे प्रमुख एवं शक्तिशाली पार्टी कांग्रेस ने अपने नागपुर अधिवेशन में सहकारी खेती के सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है। इसके बाद कम्युनिस्ट, प्रजासमाजवादी एवं समाजवादी सभी दलों ने सहकारी खेती पर जोर दिया है और इस कार्यक्रम में सहयोग देने का निश्चय प्रकट किया है। इससे देश की ८० प्रतिशत जनता की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है। इस बात का प्रयास करना है कि जो निर्णय राजनैतिक रूप से जागृत नेताओं ने स्वीकार किया है, उसे व्यापक समाज-शिक्षा द्वारा देश की समूची जनता का निर्णय बनाना है।

२. सहकारिता की कार्य-प्रणाली के बारे में व्यापक शिक्षा देनी चाहिए, जिससे लोग उसके उद्देश्यों को पूर्ण रूप से समझ सकें।

३. सहकारिता के नियम व्यापक एवं सरल बनाने चाहिए, जिससे समय एवं परिस्थिति के अनुसार उसके अन्दर परिवर्तन किया जा सके।

४. सरकारी नियंत्रण कम-से-कम रखा जाय। सहकारिता के मार्ग में से स्वार्थी वर्गों को निकाला जाय, जिससे उसका शुद्धिकरण हो सके।

भूमि की अधिकतम सीमा राष्ट्रीय औसत के अनुसार रखी जाय। सबको भूमि मिल जाने पर जोतें इतनी छोटी होंगी कि

अलग-अलग खेती करना कठिन होगा और लोग मिल-जुलकर खेती करना स्वयं पसंद करेंगे।

५. सर्वप्रथम साधन अथवा सेवा-समितियों को प्रयोग के रूप में चलाया जाय एवं उनके सफल प्रयोग के पश्चात् ही सहकारी कृषि प्रारम्भ की जाय। साधन या सेवा-सहकारिता में प्रत्येक गांव के प्रत्येक परिवार को सम्मिलित किया जाय, उसके बाद ही सहकारी खेती की चर्चा की जाय। सेवा-सहकारी समितियों के सच्चे अर्थ में जनता का आन्दोलन बन जाने के बाद सहकारी खेती का विकास बहुत ही सरल हो जायगा।

: १० :

सहकारी शिक्षा

बहुत लोगों का मत है कि भारत में सहकारी आन्दोलन असफल रहा है। यह बात भले ही अक्षरशः ठीक न हो, परन्तु इतना तो अवश्य सही है कि पचास वर्ष के जीवन में सहकारी आन्दोलन ने उतनी सफलता नहीं प्राप्त की, जितनी आशा की जाती थी। साधारणतः लोगों का कथन है कि विभागीय सहकारी कर्मचारी मनमानी करते हैं, सोसायटी के कामों में दिलचस्पी नहीं लेते, सभाओं में बराबर सम्मिलित नहीं होते, सोसायटी में सदस्यों को हिसाब समझाया नहीं जाता, मुनाफा नहीं बंटता इत्यादि। इसके अलावा कहीं-कहीं पर बेईमानी किये जाने की भी शिकायत होती है। साधारणतया लोग इसके लिए विभागीय कर्मचारियों को दोषी ठहराते हैं। विभागीय कर्मचारियों का कहना है कि इन कमियों की जिम्मेदारी सदस्यों और पंचों की है। अगर वे दिलचस्पी लें तो यह गड़बड़ियां न हों। उनका यह भी कहना है कि समितियों के कार्य-संचालन में वे अपने कर्त्तव्य से ज्यादा कार्य करते हैं, अगर वे न करें तो जो कार्य होता है वह भी न हो। समस्या गम्भीर है। एक की जिम्मेदारी है मगर कार्य नहीं करता, दूसरा करता है मगर जिम्मेदारी नहीं मानता। ऐसी दशा में स्पष्ट है कि कार्य अच्छा नहीं होता और असफलता की जिम्मेदारी कर्मचारी और सदस्य एक-दूसरे पर थोपते हैं। अगर इस परिस्थिति का विस्तार से अध्ययन किया जाय तो एक बात स्पष्ट होगी और वह है, सदस्यों,

पंचों और कर्मचारियों में सहकारी शिक्षा और अपने-अपने कर्त्तव्यों की जानकारी की कमी।

अभी तक सहकारी समिति के पंचों और सदस्यों को सहकारी



शिक्षा में बहनें भी पीछे नहीं हैं

शिक्षा देने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया जाता था। समितियों में जब सभाएं होती थीं उस समय उन्हें अवश्य कुछ शिक्षा देने का नियम रहा है, परन्तु यह काम व्यवस्थित ढंग से बहुत कम हुआ है।

अधिकांश सदस्यों और पंचों को यह नहीं मालूम होता कि समिति किसकी है, कौन उसका मालिक है, कौन उसे चलायेगा ? समिति के कुछ सदस्य और पंच यह भी नहीं जानते कि अगर समिति की सभाएं न की जायं या सभाओं में सम्मिलित न हुआ जाय, या समिति से कर्ज लेकर उसे वापस न किया जाय तो किसकी हानि है ? इन सभी प्रश्नों की ठीक जानकारी सदस्यों को नहीं होती। और वे अज्ञान के कारण दिलचस्पी नहीं लेते। कभी-कभी कुछ लोग समिति का कर्ज वापस नहीं करते और फिर अपनी हानि स्वयं करते हैं ? अभी तक विभिन्न राज्य-सरकारों की ओर से विभाग के कर्मचारियों को शिक्षा देने का कार्य अवश्य होता था। यह शिक्षण-कार्य कुछ महीनों का होता था, जिसमें विभाग के कर्मचारियों को सहकारिता के बारे में शिक्षा दी जाती थी। ऐसा होने से विभाग के कर्मचारी जो केवल निगरानी, निरीक्षण और पथप्रदर्शन के लिए होते आये हैं, सहकारिता के महत्व को समझते थे और सारा कार्य स्वयं करने का प्रयास करते थे। परन्तु सदस्य जिनकी अपनी समिति होती है और जो स्वयं उसके हानि और लाभ के जिम्मेदार होते हैं, उसके बारे में बहुत कम समझते हैं।

लगभग पांच वर्ष हुए अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण-पर्यवेक्षण समिति (आल इण्डिया रूरल क्रेडिट कमेटी) ने सिफारिश की है कि यदि सहकारी संगठन को आन्दोलन का रूप देना है तो समस्त गैरसरकारी सहकारी कार्यकर्ताओं को सहकारी शिक्षा देने का तुरन्त प्रवन्ध किया जाय। यह सिफारिश सरकार द्वारा स्वीकृत हो चुकी है। सहकारिता के आधार पर किसी भी योजना को प्रारम्भ करने के पूर्व यह बहुत आवश्यक माना गया है कि जिनके

बीच में उस योजना को चालू करना है उनको सहकारी ढंग पर काम करने के सिद्धांत, प्रबन्ध करने की विधि और साधन इकट्ठा करने के तरीकों से ही बता दिया जाय ताकि वे अपने पैरों पर शीघ्र खड़े हो सकें। विकास अन्वेषणालय, उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत नौरंगा सहकारी संघ, कानपुर में पहले-पहल सदस्यों के नियमित शिक्षण की योजना चलाई गई। इसमें एक कनैडियन विशेषज्ञ और कुछ भारतीय अधिकारियों ने भाग लिया। इसके बाद अखिल भारतीय सहकारी संघ, नई दिल्ली ने सहकारी शिक्षा देने के लिए प्रशिक्षकों का प्रबन्ध किया। सदस्यों को भिन्न-भिन्न दिलचस्प तरीकों से शिक्षा देने की ट्रेनिंग का प्रबन्ध सन् १९५७ में दिल्ली के समीप एक गांव में किया गया। इसके बाद सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्डों में ग़ैर-सरकारी सहयोगियों के प्रशिक्षण की योजना चलाई गई। आशा है कि अगले कुछ वर्षों में ऐसे प्रशिक्षण-केन्द्र देश के समस्त जिलों में आरम्भ हो जायंगे।

सहकारी शिक्षा होने के लिए आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को तीन श्रेणी में बांट दिया गया है। प्रत्येक श्रेणी के व्यक्तियों की जिम्मेदारी, योग्यता व कर्त्तव्य के आधार पर उनका पाठ्यक्रम निर्धारित कर दिया गया है—

(१) प्राइमरी सहकारी समितियों के अवैतनिक पदाधिकारी, जैसे सरपंच, मंत्री आदि के लिए—ट्रेनिंग छह सप्ताह चलती है और प्रत्येक ट्रेनिंग शिविर में कम-से-कम बीस पदाधिकारी प्रशिक्षित किये जाते हैं।

(२) पंच, खजांची और संचालकों को उनके कर्त्तव्य, अधिकार व उत्तरदायित्व की शिक्षा देने के लिए—प्रशिक्षण एक

सप्ताह चलता है। इसमें भी एक बार में बीस पदाधिकारी होते हैं।

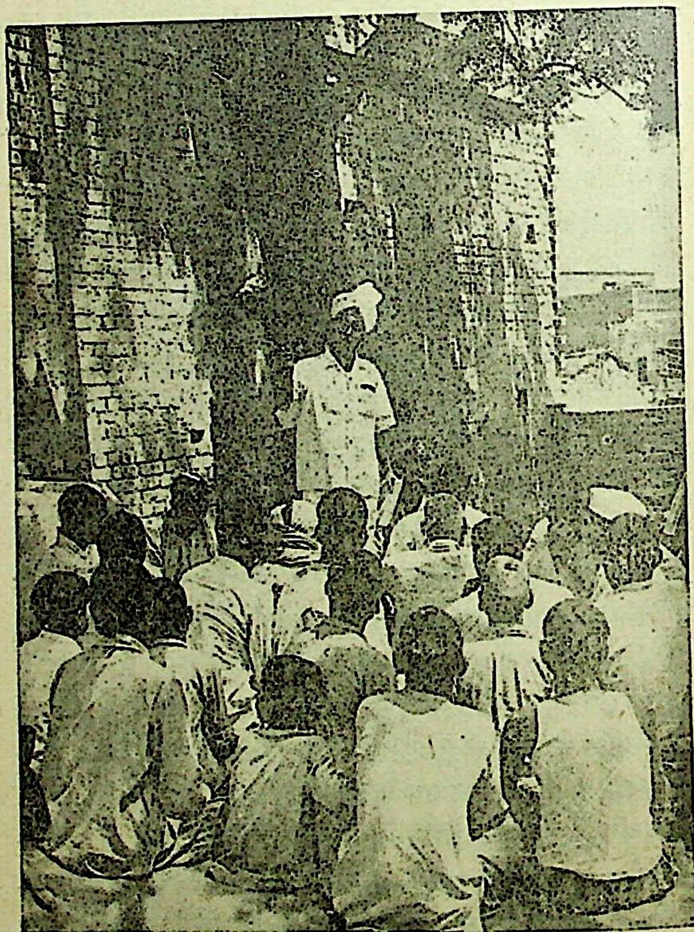
(३) सदस्यों व गैर-सदस्यों को—सहकारी विकास-योजना—उससे आर्थिक दशा में सुधार तथा उसके साधारण लाभ का प्रशिक्षण देने के लिए—यह शिविर तीन दिन तक चलता है और एक बार में लगभग तीस-चालीस व्यक्ति प्रशिक्षित होते हैं।

अखिल भारतीय सहकारी संघ, नई दिल्ली—यह कई केन्द्रों पर राज्य-सहकारी संघों के द्वारा प्रशिक्षण चालू करता है। अखिल भारतीय सहकारी संघ सुझाव देता है, रास्ता बतलाता है और शिक्षण साधनों द्वारा उसमें सहायता देता है। राज्य-सहकारी संघ प्रशासन, देखभाल की जिम्मेदारी रखता है। जिले के स्तर पर राज्य-संघ इस योजना को जिला सहकारी संघों द्वारा चालू करता है। इस योजना के अन्तर्गत अधिक-से-अधिक केन्द्र छोटे-छोटे क्षेत्रों में स्थान-स्थान पर खुलेंगे, ताकि किसान भाइयों को दूर तक जाने का कष्ट न हो, समय बेकार नष्ट न हो और अधिक-से-अधिक कार्यकर्ता ट्रेनिंग पाकर आन्दोलन को शीघ्र आगे बढ़ा सकें। जहां कहीं जिला-सहकारी संघ नहीं हैं वहां पर काम-चलाऊ समिति बनाकर प्रशिक्षण का कार्य चलाया जायगा। इसके अतिरिक्त समय-समय पर सामूहिक बैठकें, विचार-गोष्ठियां, दृश्य-दर्शन, ग्रीष्म-शिविर और सामूहिक विवादों का संगठन होता रहेगा, जिससे शिक्षण की बातों का अनुसरण हो सके। इन शिक्षण केन्द्रों में दृश्य-श्रव्य साधनों—जैसे रेडियो, ग्रामोफोन, फ़िल्म, फिल्म स्लाइड, फ्लैनेल ग्राफ, फिलप बुक आदि साधनों का प्रयोग होगा और जिला-सहकारी संघ उनकी पूर्ति में पूरी सहायता देगा।

सहकारी शिक्षा की एक दूसरी योजना केन्द्रीय समिति ने भारत सरकार और रिजर्व बैंक आफ इंडिया के सहयोग से विभिन्न स्तर के सहकारी विभाग के कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए बनाई है। इस योजना के अंतर्गत पूना जिले में अखिल भारतीय सहकारी शिक्षण-केन्द्र स्थापित किया गया है, जहांपर ऊंचे स्तर के कर्मचारियों की ट्रेनिंग होती है। इसके अतिरिक्त पांच क्षेत्रीय और आठ ब्लाक स्तरीय शिक्षण-केन्द्र सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए खोले गये हैं। विभिन्न राज्यों में साधारण स्तर के कर्मचारियों के शिक्षण के लिए और भी शिक्षण-केन्द्र खोले जा रहे हैं। इन शिक्षण-केन्द्रों में क्रय-विक्रय सहकारी समितियों और भूमि-प्रबन्धक समितियों के बारे में भी शिक्षा दी जायगी। यह शिक्षा इस उद्देश्य से है कि सहकारी विभाग के कर्मचारियों को आज की विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों की कार्य-प्रणाली के बारे में पूरी जानकारी हो जाय।

उत्तर प्रदेश में जिला इटावा के भाग्यनगर ब्लाक में दिसम्बर १९५४ में सहकारी समितियों की तत्कालीन स्थिति से अवगत होने और शिक्षा-कार्य के लिए एक आधार स्थापित करने के लिए एक जांच की गई। यह जांच पूछताछ तथा व्यक्तिगत सम्पर्क के आधार पर हुई और भाग्यनगर संघ के अंतर्गत सभी समितियों के तिहाई सदस्यों से पूछताछ करके की गई थी। इसमें प्रकृति-सम्बन्धी प्रश्न भी पूछे गये थे। इस सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ कि सदस्यों को अपनी समिति के बारे में, उसके उद्देश्य और कार्य-संचालन के बारे में बहुत कम जानकारी थी। यह भी ज्ञात हुआ कि समिति में प्रचार-कार्य की बहुत कमी थी। अधिकांश लोगों को यह नहीं मालूम था कि समिति किसकी है, उसमें भाग लेने से क्या

लाभ है, एक हिस्से का मूल्य कितना है, ऋण पर ब्याज की दर कितनी ली जाती है, आदि। इस सर्वेक्षण के बाद उसी क्षेत्र की छः



सहकारिता का शिक्षण

समितियों में सहकारी सदस्य-योजना का कार्य आरम्भ किया गया। इस योजना के अंतर्गत संघ के संचालकों, विकास-अधिकारियों, ग्राम-सेवकों और अन्य कर्मचारियों के सहयोग से दो दिन के शिक्षण-शिविर चलाये गए। गांवों में सभाएं की गईं, सहकारी सम्मेलन किये गए और ज्यादा-से-ज्यादा प्रचार किया गया। इस प्रशिक्षण के उपरान्त जांच द्वारा यह पता चला कि सदस्यों में सहकारी शिक्षा का ज्ञान बढ़ा, उनकी कमियां दूर हुईं और आपस के सम्बन्ध ठीक हुए। इससे सदस्यों का सहयोग बढ़ा और गैरसदस्यों में भी उत्साह पैदा हुआ। इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि अभी सदस्यों के बीच सहकारी शिक्षा की काफी कमी है और सच्चाई और लगन से इस ओर कार्य होने से उनकी कमियां दूर हो सकती हैं और समितियां लाभदायक बन सकती हैं।

आज ग्राम जनता में सहकारिता की जानकारी बहुत कम है, जिसके कारण लोगों में सहकारिता के सम्बन्ध में बहुत-से भ्रम हैं। अपने आर्थिक और सामाजिक जीवन में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसमें सहकारिता के द्वारा लाभ नहीं उठाया जा सकता, परन्तु इसकी सफलता, विकास, सुदृढ़ता एवं स्थायित्व इस बात पर निर्भर करेगा कि सहकारिता की भावना कहांतक लोगों के हृदय में प्रवेश कर चुकी है। सहकारिता हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग है। आज के युग में इसका सहारा लिये बिना अधिकांश लोगों का आगे बढ़ना कठिन है। इसलिए यह आवश्यक-सा प्रतीत होता है कि देश में स्कूलों, कालिजों, विश्वविद्यालयों में सहकारिता के बारे में शिक्षा दी जाय। जब यह शिक्षा बचपन से ही दी जाने लगेगी तभी वास्तव में यह हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग हो सकेगी।

सहकारिता की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि हमारे चारों ओर सहकारिता का जाल बिछा हो। स्कूलों में, बाजारों में, और मुख्य-मुख्य स्थानों में जब हम सहकारी समितियों को चलते देखेंगे तो उसका प्रभाव हमारे जीवन में बिना पड़े नहीं रह सकेगा। यह तभी सम्भव होगा जब जनता और सरकार इस ओर अधिक ध्यान देगी और अधिक-से-अधिक संख्या में सहकारी समितियां बनाने के लिए लोग प्रयास करेंगे। अगर हमारे सामने अपनी कठिनाइयों का हल करने में सहकारिता का मार्ग सहायक हो तो शीघ्र ही हमारा व्यक्तिवादी समाज सहकारी समाज बन सकता है।

बहुत-से लोगों में यह भ्रम है कि सहकारिता केवल कारोबारी संस्था है, जिसका उद्देश्य अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाकर सदस्यों की आर्थिक उन्नति करना है। यह बात सर्वथा निर्मूल है। सहकारिता का उद्देश्य सेवा करना है न कि मुनाफा कमाना। यह बात तभी लोगों की समझ में आ सकती है जब अधिकांश समितियां ऐसे कार्यक्रमों को अपनायें, जिससे सदस्यों की अधिक-से-अधिक सेवा हो सके। बहुत-से देशों में सहकारी समितियां स्कूल और अस्पताल तथा अन्य सेवा-संस्थाएं चलाती हैं। ऐसे कार्यों से लोगों की सुविधाएं बढ़ती हैं, उनकी सेवा होती है, आन्दोलन को एक नैतिक बल मिलता है और सहकारी आन्दोलन तेजी से व्यापक बनता जाता है।

हमारे समाज में अबतक व्यक्तिगत सम्पत्ति और एकान्तवादी जीवन की बड़ी मान्यता रही है। इस धारा में उचित मोड़ देने के लिए सहकारी शिक्षा का सामाजिक जीवन के हर स्तर पर व्यापक प्रसार करना होगा। युग-युग की मान्यताओं को बदलने

में समय लग सकता है, पर उचित संगठन, शिक्षण और कार्य-संचालन से ऐसा अनुकूल वातावरण बनाया जा सकता है, जिससे सहकारिता का आदर्श एक-एक पुरुष, महिला और बच्चे के मन में पूरी तरह बैठ जाय।

इस शिक्षा के लिए सफलताओं और असफलताओं की प्रत्यक्ष कहानी के आधार पर चर्चा होनी चाहिए। प्रत्येक सदस्य शिक्षार्थी को अपने अनुभवों, कठिनाइयों और सुझावों को रखने का अवसर मिलना चाहिए। तभी सदस्य-शिक्षा की योजना पूर्णतः उत्साह-वर्धक और लाभप्रद सिद्ध होगी।

सदस्यों और पंचों की शिक्षा की एक प्रस्तावित योजना निम्नलिखित है—

(अ) तीन दिन का सदस्य-शिक्षा-पाठ्यक्रम

१. सहकारिता के सिद्धान्त—काम करने के उसूल।

२. बाइलाज या नियमावली—सदस्य बनना, निकलना, हिस्सा-जिम्मेदारी।

३. सदस्यों के अधिकार, कर्त्तव्य और जिम्मेदारियां, बैठकें, चुनाव, दलबन्दी से अलग रहना।

४. कर्ज कैसे मिलते हैं, किस काम के लिए मिलते हैं, दूसरे काम में खर्च करने से नुकसान क्या है? देहाती महाजन और समिति के लेन-देन में अन्तर क्या है? दूसरे के नाम प्रोनोट बनाकर कर्ज लेने से क्या हानि है?

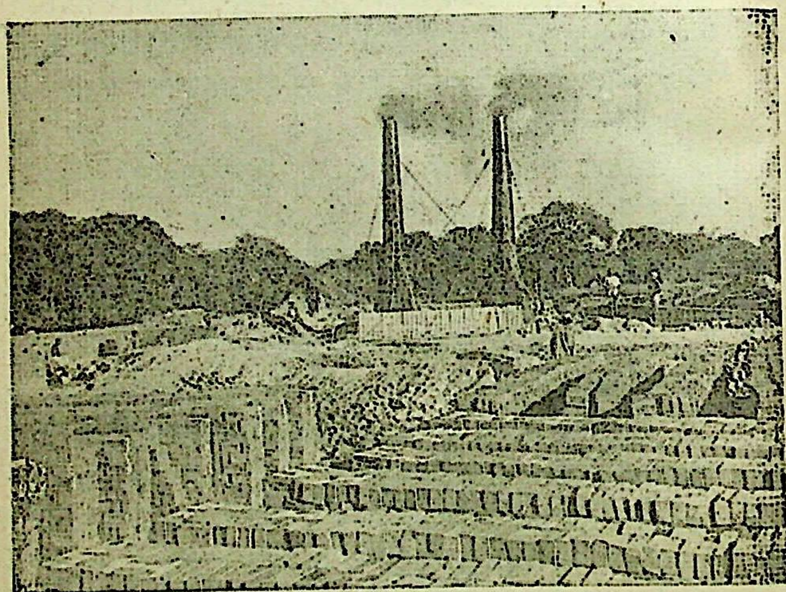
५. पदाधिकारी किसे कहते हैं, उनका समिति के सदस्य एवं पंचों से क्या संबंध है। पंचायत को उनमें कहांतक विश्वास करना चाहिए। उनके अधिकार क्या हैं?

६. सदस्यों को ईमानदार व सच्चा क्यों होना चाहिए। उन्हें

वैतनिक व अवैतनिक कर्मचारियों से अनुचित लाभ क्यों नहीं उठाना चाहिए।

७. उन्हें अफवाहों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

८. उन्हें विना पढ़े, समझे-बूझे आंख मूंदकर जहां कहीं दस्तखत क्यों न कर देने चाहिए ?



सहकारी केन्द्रों के लिए ईंटें तैयार हो रही हैं

(आ) पंचों का एक सप्ताह का शिविर पाठ्यक्रम

१. सहकारिता के सिद्धान्त।

२. बैठकों का महत्व। विभिन्न बैठकों के अधिकार और कर्त्तव्य, प्रस्तावों का महत्व, पास प्रस्ताव के अनुसार काम करना।

३. कर्ज कैसे मंजूर किये जाते हैं ? ऋण लौटाने की शक्ति को निश्चित करने के नियम।

४. समिति के कार्य करने के तरीके।

५. हिसाब के रजिस्टर और नक्शों का विवरण।

६. पंचों के अधिकार, कर्त्तव्य व जिम्मेदारियां, तहवील अमानत, एवं वापसी के कर्जे की जांच।

७. बैंक पासबुक तथा चैकबुक की जांच।

८. पंचों द्वारा समिति के कामों में दिलचस्पी लेने से लाभ और उदासीनता से हानियां।

: ११ :

सहकारिता-आन्दोलन व्यापक कैसे हो ?

सहकारिता-आन्दोलन की तरफ आजकल हरएक वर्ग का ध्यान लगा हुआ है। देश की आर्थिक समस्याओं का हल इस आन्दोलन की सफलता पर विशेष रूप से निर्भर है।

हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का आधार कृषि है। अतः सहकारिता का उसमें महत्वपूर्ण स्थान है। सहकारिता के व्यापक प्रसार की योजनाएं भी हमारी पंचवर्षीय आयोजना में सम्मिलित हैं और द्वितीय आयोजना के बाद भारत का हरएक गांव और सम्भवतः हरएक परिवार इस आन्दोलन के अंतर्गत आ जायगा। किन्तु समस्या आन्दोलन के प्रसार की नहीं, बल्कि यह है कि इसे एक जनप्रिय आन्दोलन कैसे बनाया जाय और इसे सुदृढ़ कैसे किया जाय ? अधिकांश निराशावादी विचारक एवं विद्वान आलोचक इस आन्दोलन की सफलता के बारे में संदेह करते हैं। वे आन्दोलन की प्रगति को या उसके विकास की समस्याओं को सदा सहानुभूति से नहीं देखते। ऐसे लोग जाने या अनजाने ही पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था के समर्थक बनते हैं। समाजवादी विचारधारा के लोग सहकारिता-आन्दोलन की सफलता और क्रमिक विकास के प्रति पूर्ण विश्वास रखते हैं और यही उचित भी है। कोई कारण नहीं कि यदि संसार के अन्य देशों में सहकारिता-आन्दोलन सफल हो सकता है और उसमें वांछित प्रगति हो सकती है तो भारत में ही वह असफल हो जाय। इतनी उज्ज्वल संभावनाओं के बावजूद

भी क्यों सहकारिता-ग्रान्दोलन ग्राजतक उतनी प्रगति नहीं कर सका, जितना उसे करना चाहिए था ? किस प्रकार उसे व्यापक ग्रौर लोकप्रिय ग्रान्दोलन बनाया जा सकता है ग्रौर किस प्रकार ग्राज इस ग्रान्दोलन के प्रति समाज के ग्रधिकतर लोगों में जो ग्रसंतोष फैला हुग्रा है, उसको दूरकर इसमें एक ग्राग फूंकी जा सकती है, ग्रौर इसे जनता का ग्रान्दोलन बनाया जा सकता है।

सहकारिता का कार्यक्रम देश में सन् १९०४ से सरकारी कार्यक्रम के रूप में ग्रारम्भ हुग्रा। तबसे इसे जनता का ग्रान्दोलन वनाने के लिए सरकार के द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया, जिससे इतनी लम्बी ग्रवधि में भी यह ग्रान्दोलन सुदृढ़ ग्रौर लोकप्रिय नहीं हो पाया। सन् १९३७ में पहली बार जब प्रान्तों में कांग्रेस-सरकारें बनीं ग्रौर सहकारिता प्रान्तीय विषय के रूप में उनके हाथों में ग्राई तो इसकी प्रगति के लिए प्रयास किये गए। किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद उन सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया ग्रौर इस विषय की ग्रधिकांश योजनाएं कार्यान्वित नहीं हो सकीं। इस प्रकार स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय तक यह ग्रान्दोलन शिथिल ग्रवस्था में ही रहा।

सहकारिता-ग्रान्दोलन की ग्रबतक की ग्रसफलता के कुछ विशेष कारण हैं। इनपर विचार कर लेने से हमें इस ग्रान्दोलन को फिर से संगठित करने में काफी सहायता मिलेगी।

(१) स्वतंत्रता के पूर्व यह ग्रान्दोलन सरकारी कार्यक्रम के रूप में चलता रहा ग्रौर इसे प्रजातान्त्रिक ग्रौर जन-ग्रान्दोलन का रूप देने का प्रयास नहीं किया गया। इस विभाग के प्रति भी जनता का दृष्टिकोण ऐसा ही बना रहा जैसा ग्रन्य सरकारी विभागों के प्रति था। यह ग्रान्दोलन एक सरकारी विभाग होकर

रह गया और जनता के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट न कर सका।

(२) ज्यों-ज्यों यह कार्यक्रम विस्तार पाता गया, इसमें कुछ दोष भी बढ़ते गये। बहुत-सी नई समितियां शीघ्रता से बिना लोगों को सहकारी शिक्षा दिये ही संगठित की गईं। बिना सहकारी शिक्षा के ज्ञान के तथा स्वेच्छा से जनता द्वारा इसकी मांग न होने से वे समितियां सुसंगठित और सुदृढ़ नहीं हो सकीं।

(३) सदस्यों को ऋण पूरी जांच-पड़ताल एवं हैसियत का ध्यान रक्खे बिना दे दिये गए और उसकी वसूली पर भी ध्यान नहीं दिया गया। फलतः बकाया बढ़ने लगा और समितियां धीरे-धीरे टूटने लगीं।

(४) कुछ समितियों में अपरिमित दायित्व होने के कारण जिन लोगों ने ऋण नहीं लिया था, उन्हें भी रुपया देना पड़ा। फलतः आन्दोलन की लोकप्रियता समाप्त हो गई।

(५) समितियों ने केवल ऋण-वितरण का ही कार्य किया। सदस्यों की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति इनसे नहीं हो सकी, इसलिए इसमें अधिक-से-अधिक लोग शामिल नहीं हो सके। इन समितियों के केवल ऋण लेनेवाले लोग ही शामिल हुए और इस तरह आन्दोलन सर्वव्यापी नहीं बन सका।

(६) १९२९-३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का प्रभाव भारत पर भी पड़ा और किसानों की आर्थिक दशा निरन्तर शोचनीय होने लगी, जिसके फलस्वरूप आन्दोलन को गहरा धक्का लगा।

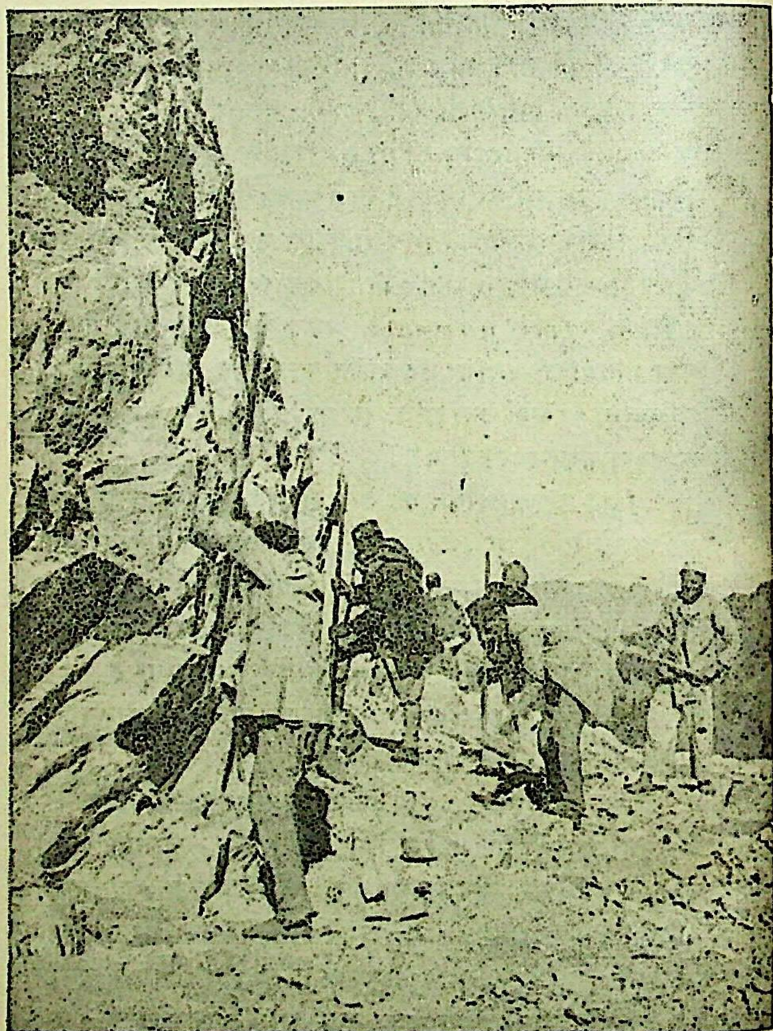
(७) किसानों की आर्थिक उन्नति के लिए १९३८-३९ में क्रय-विक्रय का कार्य प्रारम्भ किया गया और ग्रामीण स्तर पर ग्राम-बैंकों द्वारा उनकी पैदावार की बिक्री का समुचित प्रबन्ध

करने के अतिरिक्त क्षेत्रीय स्तर पर क्रय-विक्रय संघ भी स्थापित करने की योजना प्रारम्भ हुई। किन्तु युद्धकालीन कन्ट्रोलों ने सहकारी क्रय-विक्रय को गहरा धक्का पहुंचाया।

(८) १९४८ में कांग्रेस-सरकार ने राज्य में अधिकांश नियंत्रित वस्तुओं का वितरण कार्य सहकारी समितियों को सौंप दिया, जिसके परिणाम-स्वरूप सहकारी उपभोक्ता आन्दोलन ने भी बड़ी तीव्र गति से उन्नति की। परन्तु नियंत्रण के हट जाने पर प्रदेश के सहकारी आन्दोलन को नये संकट का सामना करना पड़ा। नियंत्रित वस्तुओं एवं राशन के वितरण-कार्य में सहकारी समितियों की पूंजी तथा शक्ति लग गई थी, जिसके कारण ऋण व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई।

(९) इस आन्दोलन का मुख्य कार्यक्रम ऋण का वितरण ही रहा है, परन्तु ऋण सदस्यों को उनकी आवश्यकतानुसार नहीं दिया गया। अधिक-से-अधिक ४०० रुपया एक सदस्य को दिया गया और अपर्याप्त ऋण मिलने के कारण सदस्यों को अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए महाजनों के पास जाना पड़ा और इस प्रकार इस आन्दोलन का मुख्य ध्येय सदस्यों को महाजनों के पंजे से निकालना भी पूर्ण न हो सका।

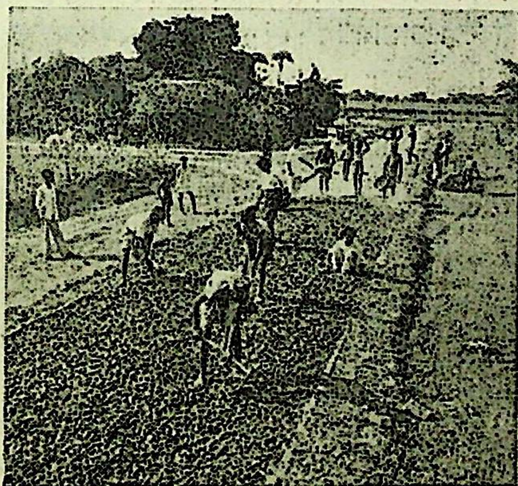
(१०) सदस्यों को ऋण देने की व्यवस्था पेचीदी है। कर्जा-दरख्वास्त बनाने और सदस्यों में सहकारी ज्ञान न होने के कारण और सहकारी सुपरवाइज़र का प्रभुत्व होने के कारण ऋण मिलने में बहुत समय लगता है। सदस्यों को जिस समय ऋण की आवश्यकता होती है उस समय ऋण नहीं मिल पाता और उन्हें अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए महाजन के पास जाना पड़ता है। जब उन्हें सहकारी समितियों से ऋण मिलता है, उसे सदस्य अपनी



श्रमदान द्वारा पर्वतों को काटकर रास्ता बनाया जा रहा है।

कृषि की पैदावार बढ़ाने में नहीं लगाते और वह धन व्यर्थ खर्च हो जाता है।

(११) इस समय तक सहकारी समितियों में कर्जा-दरख्वास्त बनाने का जो तरीका रहा है, उसके कारण कुछ लोग इच्छा होते हुए भी सहकारी समितियों के सदस्य नहीं बन पाये। सामाजिक बन्धनों और मान-मर्यादा के भय से ऋण की आवश्यकता होते हुए भी कुछ लोगों ने सहकारी समितियों का सदस्य बन इन समितियों से ऋण लेना उचित नहीं समझा। महाजनों से ऋण लेकर वे उनके ही पंजे में फंसते रहे।



अपनी आवश्यकता की आप पूर्ति

(१२) सहकारी सदस्यों को तो सहकारी शिक्षा का ज्ञान नाममात्र के लिए ही दिया गया। इसके साथ-साथ सहकारी निरी-

क्षक व सहकारी सुपरवाइज़रों को भी प्रशिक्षण पर्याप्त मात्रा में नहीं दिया गया। इस अपर्याप्त ज्ञान के कारण वे लोग सन्तोषजनक कार्य नहीं कर पाये। इसके अतिरिक्त बहुत-से कर्मचारियों में स्वयं ग्रामीण जनता के प्रति अनादर का भाव और सहकारी आन्दोलन के प्रति अविश्वास है। इससे वे पूरे उत्साह से इसमें जुट नहीं पाते।

(१३) सरकार द्वारा दूसरे अनुदान एवं ऋण इत्यादि दूसरे विभागों के द्वारा दिये गए, जिसके कारण जनता के हृदय में यह आन्दोलन आकर्षक न बन सका।

(१४) सदस्यों को सहकारी ज्ञान न होने के कारण कुछ सहकारी सुपरवाइज़र अपना प्रभुत्व जमाये रखते हैं और कुछ स्वार्थी सदस्यों के साथ मिलकर समिति में मनमाना भ्रष्टाचार फैलाते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सहकारिता-आन्दोलन असफल नहीं रहा, बल्कि उसने वांछित सफलता एवं प्रगति नहीं प्राप्त की, जो परिस्थितियों और कारणों को देखते हुए स्वाभाविक है। फिर भी, सहकारिता का भविष्य उज्ज्वल है तथा आशाओं एवं सम्भावनाओं से पूर्ण है। इसके अतिरिक्त लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के द्वारा भारत में जो लोक-कल्याणकारी राज्य एवं समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उसकी पूर्ति में पंचायत एवं सहकारी समिति जैसी जनता की अपनी संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। देश में आर्थिक एवं औद्योगिक क्रान्ति भी सहकारिता-आन्दोलन के द्वारा ही सम्भव है। इसके द्वारा ही पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था को समाजवादी अर्थ-व्यवस्था के रूप में परिवर्तित किया जा सकेगा, जो नवीन समाज की रचना के लिए अनिवार्य है। अतः सहकारिता

के अस्तित्व, उसकी महत्ता और उपादेयता से इन्कार नहीं किया जा सकता।

अब प्रश्न केवल यह है कि सहकारिता-आन्दोलन को कैसे अधिक व्यापक, लोकप्रिय, सुदृढ़ एवं उपयोगी बनाया जाय। इसके लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं :

(१) सहकारिता की पूर्ण सफलता के लिए सदस्यों को सहकारी शिक्षा देना बहुत आवश्यक है। सदस्यों को और मंत्री, खजांची तथा सरपंच आदि को समय-समय पर शिविरों का आयोजन कर सहकारी ज्ञान दिया जाय। सदस्यों एवं ग्रामीणों को अनेक श्रव्य-दृश्य साधनों से सहकारिता की शिक्षा दी जाय। इसके प्रचार एवं प्रसार के लिए विकास-खंडों में अपेक्षित धन की व्यवस्था आवश्यक है।

(२) केन्द्रीय और राज्य-सरकारों द्वारा लोगों को जो भी अनुदान, सहायता और तकावी, ऋण आदि दिये जाते हैं वे सब सहकारी समितियों के द्वारा दिये जायं। कुटीर-उद्योग-धंधों का कार्यक्रम भी इन्हीं समितियों द्वारा संचालित हो।

(३) सहकारी समितियों की नि॰ मावली में कुछ आवश्यक परिवर्तन किये जायं जिससे कि हरएक परिवार उसका सदस्य वन सके और उससे लाभान्वित हो सके।

(४) विभाग के अन्तर्गत ग्राम-स्तरीय कर्मचारियों (सहकारी सुपरवाइज़रों) की संख्या में वृद्धि भी आवश्यक है, जिससे लोगों को पर्याप्त निर्देशन मिल सके। इन कर्मचारियों को पर्याप्त प्रशिक्षण भी दिया जाना आवश्यक है।

(५) सहकारी समितियों के संगठन के लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित होने चाहिए कि बिना पर्याप्त शिक्षा दिये समितियों का

जल्दी में संगठन न किया जाय।

(६) सहकारी समितियों का कारबार, जैसे उपभोक्ता भंडार, या खाद, बीज, औजार आदि की पूर्ति का प्रबन्ध इस तरह होना चाहिए कि सहकारी समितियों की चीज बाजार से महंगी न हो। उनके प्रबन्ध को व्यवस्थित करने से कुछ कारबार में आर्थिक लाभ हो और सदस्यों को समय से अपने लगाये हुए धन का उचित व्यय और लाभांश मिलता रहे।

(७) सहकारी कर्मचारियों का चुनाव व उनके कार्य का निरीक्षण अधिकांश में स्थानीय समितियों या संघों के सरपंच, पंच और सदस्य करें। इसके सम्बन्ध में उन्हें उचित शिक्षा दी जाय, ताकि वे अपनी जिम्मेदारी ढंग से संभाल सकें।

(८) जहां किसी कर्मचारी के खिलाफ कोई शिकायत हो तो कड़ी कार्यवाही की जाय। धन के गबन में जेल भेजना उतना उचित दण्ड नहीं जितना धन-राशि वसूल कर लेना। तबादले से बुरे अधिकारी दूसरे क्षेत्र में जाकर अपनी बुराई फैलाते हैं। उससे प्रशासन की कोई समस्या हल नहीं होती।

(९) अच्छे कर्मचारियों को किये हुए व्यवसाय पर कुछ (जमा हुए) बोनस या लाभांश द्वारा प्रोत्साहन देना चाहिए। उन्हें ग्राहकों या सदस्यों के साथ बहुत नम्रता और शिष्टाचार का व्यवहार करना चाहिए। उनका वेतन उचित होना चाहिए, ताकि उनका उत्साह बना रहे। कर्मचारियों का नैतिक विश्वास आन्दोलन के लिए सबसे अधिक आवश्यक है।

(१०) कर्मचारियों के चुनाव में सेवा-भावनावाले लोगों को प्राथमिकता देनी चाहिए। इनमें गांव में काम करने की लगन व रुचि होनी चाहिए।

(११) सहकारी समितियों या संघों के सदस्यों, पंचों और पदाधिकारियों को सच्चे अर्थ में अपनी समिति या संघ के चलाने की पूरी जिम्मेदारी दी जाय। उन्हें केवल आवश्यकता के अनुसार प्राविधिक सहायता दी जाय, क्योंकि बिना अधिकार के कर्त्तव्य के पालन में उत्साह नहीं होता।

: १२ :

एक सफल सहकारी समिति

पूर्वी-उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले में कुद्दूपुर नाम का एक प्रगतिशील गांव है। जौनपुर शहर से लगभग तीन मील दक्षिण-पश्चिम की ओर यह गांव स्थित है। इस गांव में सभी जातियों के लोग रहते हैं, परन्तु अधिकतर क्षत्रियों का विशेष प्रभाव है। शहर के निकट होने के कारण शिक्षा का यहां अच्छा प्रचार है। लोग खेती व बाग़बानी करते हैं। चमेली के फूल के बाग़ और परवल तथा मक्के की खेती-बाड़ी से कुछ लोगों को अच्छी आमदनी हो जाती है। पर अधिकतर हरिजन और पिछड़ी जातियों के लोग गरीब हैं। कुद्दूपुर में एक आदर्श सहकारी समिति है।

इस सोसायटी का प्रारंभ स्वर्गीय ठा० तिलकधारीसिंह ने किया था, जो उस समय कोआपरेटिव सोसाइटीज़ के इन्सपेक्टर थे।

इस समिति की रजिस्ट्री सन् १९०७ व १९०८ ई० में हुई थी। यह समिति पहले कुद्दूपुर, इस्मैला, इलिमपुर, बरईतारा, जयरामपट्टी तथा कादीपुर क्षेत्र में कार्य करती थी, परन्तु बहुत-सी सोसायटियों के खुलने के कारण अब इसकी सीमा संकुचित हो गई है अर्थात् अब यह केवल कुद्दूपुर के ही क्षेत्र में कार्य कर रही है।

प्रारम्भिक काल में यह सोसायटी १४ रु० १ आ० प्रतिशत वार्षिक ब्याज-दर पर ऋण देती थी और अमानतदारों को ९

प्रतिशत वार्षिक दर से व्याज देती थी। इस प्रकार सोसायटी ने पर्याप्त उन्नति की। इस समय समिति अपने सदस्यों को केवल ६ प्रतिशत वार्षिक व्याज-दर पर ऋण देती है और अमानतदारों को ३ प्रतिशत वार्षिक दर से व्याज देती है।

अधिक काल से यह सोसायटी अपनी निजी पूंजी से कार्य कर रही है। यह परमुखापेक्षी नहीं है। इस समिति के व्यक्तिगत सदस्यों की संख्या १६८ है, जिनके एक हिस्से का मूल्य २०) है। समिति की कुल कारोबारी पूंजी ४७६१८ रु० २२ नये पैसे हैं, जिसमें केवल ४०२२ रु० ७२ नये पैसे गैर-सदस्यों की अमानत है। शेष धन सोसायटी का है। वहुत दिनों से यह समिति 'ए' क्लास (प्रथम श्रेणी) में है।

इस समिति की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या ११ है।

इस समिति ने अबतक बहुत-से कार्य जनता के हित के लिए किये हैं। आटा पीसने, धान कूटने और चीनी तैयार करने की मशीनें गांव के अन्दर लगाईं। मार्गों पर प्रकाश के लिए लालटेनें लगाईं। जनता के हित के लिए सिंचाई तथा पानी पीने के कुओं के निर्माण में सहायता दी। ग्राम के अन्दर भिन्न-भिन्न स्थानों पर शिक्षाप्रद साइन बोर्ड लगवाये। चारा काटने की मशीनें गांव में भिन्न-भिन्न स्थानों में उस समय लगीं, जबकि चारा काटने की मशीनों का प्रारम्भ-काल था। ग्राम के भिन्न-भिन्न भागों में शौचालय बनवाये और उनकी स्वच्छता तथा ग्राम की सफाई के लिए व्यवस्था की। एक चौकीदार भी रक्खा गया, जो रात्रि के समय पहरा दिया करता है।

जनता के मनोविनोद के लिए नाटक के पर्दे, ताज, कोट आदि मंगवाये गये, जिससे समय-समय पर ग्राम के बालक नाटक

आदि से मनोरंजन किया करते हैं। भिन्न-भिन्न खेलों के सामान क्रय



सहकारी खेती में आधुनिक साधनों का प्रयोग

करके खेलों को प्रोत्साहन दिया गया। पुस्तकालय के लिए किताबें तथा दो अलमारी क्रय करके श्री चन्द्रप्रकाश पुस्कालय कुद्दूपुर को पर्याप्त उन्नत किया गया, जिससे पठन-पाठन की विशेष सुविधा हुई। प्रारम्भिक पाठशाला कुद्दूपुर में एक हैण्ड पम्प लगवाया गया है तथा समय-समय पर उसकी मरम्मत कराकर छोटे-छोटे बालकों की पूर्ण सहायता की गई। समय-समय पर विद्यार्थियों को सहायता तथा छात्रवृत्ति देकर उन्हें ऊंचा उठाया गया।

चार बड़ी-बड़ी दरियां,दो बिछावन,हण्डा,कण्डाल, जग तथा मजलिस के सामान क्रय करके जनता के कष्टों को दूर किया। युद्ध-काल में समय-समय पर ब्रिटिश सरकार को चन्दे देकर ग्रामवासियों को आर्थिक संकटों से मुक्त किया। बीमारियों आदि के लिए दवा इत्यादि का प्रबन्ध तो इसका नित्य का कार्य है। बारातों में दरी बिछावन, पंखा, इत्रदान, गुलाबपाश आदि का प्रबन्ध यह सहकारी समिति करती है।

यह समिति समय-समय पर खाद तथा बीज मंगाकर किसानों को लाभ पहुंचाया करती है। क़िसानों के लाभार्थ विगत कई वर्षों में मोट खरीदकर वितरण किया। कन्ट्रोल के समय में कपड़े की दूकान खोली और कपड़ा तथा चीनी का लाइसेंस प्राप्तकर ईमानदारी के साथ जनता को कष्टों से मुक्त किया। ग्राम-सुधार का कार्य सरकारी क्षेत्रों से अच्छा भी कर दिखाया।

इस प्रकार यह समिति अपना कार्य सुचारु रूप से संचालन कर रही है। समय-समय पर ऋण देना तो इसका नित्य का कार्य है। समिति को स्थापित हुए पचास वर्ष हो गये हैं।

समिति ने अपने धन और साधनों से लगभग १५,००० रु० की लागत का एक विशाल पंचायत-भवन बनवाया है। इसमें अब-

तक कोई सरकारी अनुदान नहीं लिया गया है। समिति के मंत्री व पदाधिकारी अवैतनिक काम करते हैं। साल में एक बार इनाम के रूप में इनको कुछ धन दिया जाता है।

इस समिति की सबसे बड़ी विशेषता है अपने साधनों से ही सदस्यों को ऋण देना। सहकारी बैंक जब अपनी समितियों को ८¾ प्रतिशत ब्याज पर ऋण देते हैं, पर यह समिति पोस्ट आफिस में जमा किये हुए धन से केवल ६ प्रतिशत वार्षिक ब्याज पर ऋण देती है। समिति के कोषाध्यक्ष ने बताया कि सहकारी बैंक सदस्यों के साथ उचित सुविधामय व्यवहार नहीं करते, इसलिए उन्होंने अपना धन पोस्ट आफिस में जमा किया है।

इस समिति का एक अनोखा काम चर्चा के योग्य है। बच्चे के जन्म पर समिति माता-पिता या परिवार के मालिक से बच्चे के नाम अमानत के लिए धन लेती है, जो एक प्रकार से बच्चे के लिए बीमे का काम करता है।

यह समिति पूरी तौर पर गांववालों की है। इसके संचालन व निरीक्षण पर उनका पूरा-पूरा अधिकार है। अपने इस उत्तर-दायित्व को वे गौरव के साथ निभाते हैं।

: १३ :

सहकारिता की नई दिशाएं

सहकारी समाज की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सहकारिता का सहारा लिया जाय। अबतक सहकारिता-आन्दोलन विशेषकर एक आर्थिक आन्दोलन रहा है। अब धीरे-धीरे वह एक व्यापक आन्दोलन बनने जा रहा है। पिछले दस वर्षों में निम्नलिखित नये क्षेत्रों में सहकारिता की प्रगति हुई है--

१. सहकारी दुग्ध-वितरण

२. सहकारी यातायात-व्यवस्था

३. औद्योगिक सहकारी समितियां

४. सहकारी उद्यान

५. श्रमदान

६. सहकारी बाल-बचत-योजना

श्रमदान का आन्दोलन नये ढंग से संगठित होता है। आपस में निर्णय करके लोग प्रस्तावित कार्य को परिवारों के अनुसार बांट देते हैं, प्रत्येक अपने हिस्से का काम अपनी सुविधा के अनुसार करता है। पुल-पुलिया के लिए लोग व्यय का एक भाग आपस में धन इकट्ठा करके देते हैं। इस कार्य में अनौपचारिक सहकार की भावना और कार्यशैली का उपयोग होता है।

सहकारी उद्यान सार्वजनिक भूमि पर लगाये जाते हैं। साधनों की सहायता सहकारी ढंग पर होती है, पर पेड़ों के लगाने और रक्षा

करने तथा सींचने का काम बंटा होता है। इससे सहकार में



आराम हराम है

व्यक्तिगत दिलचस्पी की भावना भी रह जाती है।

श्रमदान सार्वजनिक हित के कामों के लिए किया जाता है। किसानों की व्यक्तिगत श्रम-सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहकारी श्रम-बैंक की कल्पना की जाती है। बहुत-से गांवों में यह परिपाटी अनौपचारिक रूप से सफलतापूर्वक चलती है, पर शहरों और छोटे कस्बों में इसका संगठन करना चाहिए ताकि लोग अपने अतिरिक्त समय में अपने गांव में श्रम का काम कर लें और उनकी जरूरत पर श्रमिक सहायता उन्हें गांव से मिल सके। अब इसके अनौपचारिक संगठन की आवश्यकता है।

सहकारी बचत-योजनाएं ही आन्दोलन को मजबूत कर सकती हैं। आज जब केवल २०) जमाकर लोग २००) या ४००) का ऋण लेना चाहते हैं तो सहकारी आन्दोलन मितव्ययिता में सहायक नहीं होता—इसमें केवल धोखा होता है।

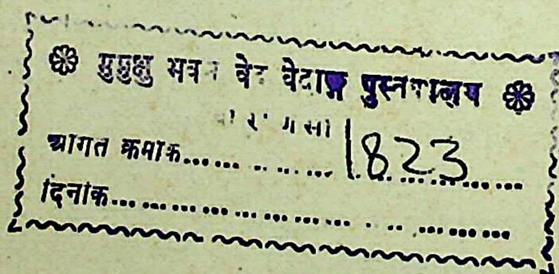
चोरी करैं निहाई की देय सुई का दान।
ऊंचे चढ़ के देखैं केतिक दूर विमान ॥

सहकारी बचत-योजनाएं यदि स्थानीय सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति ऐसी बना दें कि गांव की ऋण या आर्थिक सहायता की पूरी जरूरत सदस्यों के जमा किये हुए धन से ही होने लगे तभी वे सच्ची सहकारी समितियां बन सकेंगी। कुद्दपुर ग्राम की सहकारी समिति ऐसी ही है। बम्बई और मद्रास राज्यों में, जहां सहकारिता-आन्दोलन अच्छी तरह विकसित हुआ है, ऐसी अनेक समितियां हैं। बच्चों के लिए कुछ जमा करने की नई व्यवस्था इस सिलसिले में सराहनीय है। सहकारी कम-बचत-योजना भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। एक घड़े में एक मुट्ठी अनाज रोज

डालकर इस योजना को पूरा कर सकते हैं।

शिक्षा-संस्थाओं और अस्पतालों का संचालन भी सहकारी ढंग पर हो सकता है। इस दिशा में देवबंद ब्लाक में एक प्रयास हुआ था, पर यह स्थायी रूप से चल नहीं सका, फिर भी इसकी अनेक संभावनाएं हैं।

आन्दोलन को व्यापक बनाने का प्रयास हो रहा है। किस दिशा में कितनी प्रगति हो सकेगी, यह कुछ समय बाद ही कहा जायगा। यहां केवल यही निवेदन है कि स्थानीय जनता की सामूहिक आवश्यकता के अनुसार सहकारिता का विकास किसी क्षेत्र में भी हो, उसी तरह उसके विकास में आर्थिक, प्राविधिक और नैतिक सहायता देनी चाहिए।



'मण्डल' के
ये प्रकाशन

१. **ग्रामोद्योग**
भारतीय लोक-जीवन तथा अर्थ-व्यवस्था में ग्रामोद्योगों के महत्व का बोध करानेवाली पुस्तक।

२. **नये जीवन की ओर**
बाल तथा नारी-कल्याण के लिए होनेवाले कार्यों का बड़ी सरस तथा सुन्दर शैली में सिंहावलोकन।

३. **सहकारी समाज**
सहकारिता के आरंभ, विकास, मौजूदा हालत तथा भावी संभावनाओं पर प्रकाश।

४. **धान की खेती**
धान के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्तम भूमि, खाद तथा जापानी पद्धति से खेती करने की विधि आदि की विस्तृत जानकारी।

५. **मानव-अधिकार**
मानव-अधिकारों के संघर्ष की कहानी।



मूल्य : एक रुपया